1170

अनेकान्त

श्रावण, संवत् २००५ :: अगस्त, सन् १९४८

वर्ष ९

★

प्रधान सम्पादक
जुगलकिशोर मुख्तार

सह सम्पादक
मुनि कान्तिसागर
दरबारीलाल न्यायाचार्य
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
डालमियानगर (बिहार)

★

विश्ववन्द्य बापू

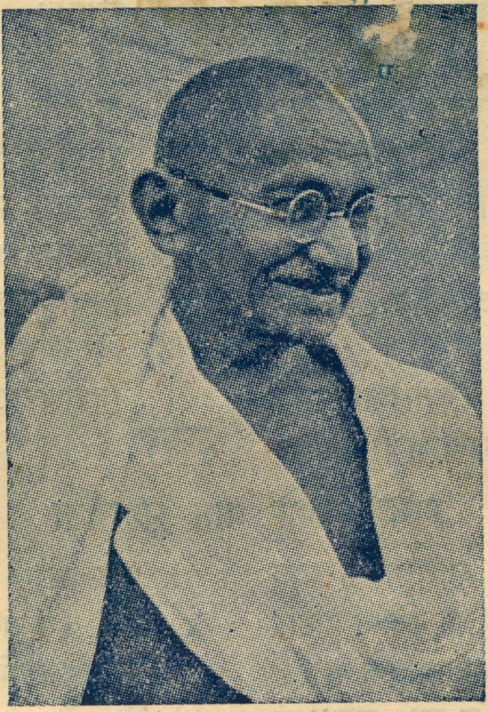

जन्म
२ अक्तूबर १८६९

महाप्रयाण
३० जनवरी १९४८

किरण ८

★

सञ्चालक-व्यवस्थापक
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

संस्थापक-प्रवर्तक
वीरसेवामन्दिर, सरसावा

★

विषय-सूची

लेख नाम	पृष्ठ	लेख नाम	पृष्ठ
१-समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने	२८७	७-'संजद' शब्दपर इतनी आपत्ति क्यों?	३१४
२-वादीभसिंहसूरिकी एक अधूरी अपूर्व कृति	२९१	८-अपहरणकी आगमें झुलसी नारियाँ	३१६
३-पं० शिवचन्द्र देहलीवाले	३०२	९-सम्यग्दृष्टिका आत्म-सम्बोधन	३१९
४-धर्मका रहस्य	३०३	१०-अतिशयक्षेत्र श्रीकुण्डलपुरजी	३२१
५-व्यक्तित्व	३०६	११-शिमलाका पर्यूषणपर्व	३२४
६-पाँच प्राचीन दि० जैन मूर्तियाँ	३११	१२-सम्पादकीय	३२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीबाबू नन्दलालजी कलकत्ताकी उदारता

श्रीमान् बाबू नन्दलालजी सरावगी कलकत्ताने वीरसेवामन्दिर द्वारा तय्यार जैन ग्रन्थोंके प्रकाशनार्थ गत जुलाई मासके अन्तमें दस हजार रुपयेके प्रशंसनीय दानका जो वचन दिया था उस दान सम्बन्धी सब रकमको आपने बड़े ही विनम्र और प्रेममय शब्दोंके साथ भेज दिया है। साथ ही ८००) रु० अपने दोनों पुत्रों चि० शान्तिनाथ और चि० निर्मलकुमारकी ओरसे अगले चार वर्षोंकी वार्षिक सहायताके रूपमें पेशगी भेजे हैं—वर्तमान वर्षकी सहायतामें २००) रु० उनकी ओरसे आप दे गये थे—और १००) रु० अपनी पत्नी श्रीमती कमलाबाईजीकी ओरसे 'सन्मति-विद्या-निधि' को प्रदान कर गये हैं, जो बालसाहित्यके प्रकाशनार्थ स्थापित की गई है। इस तरह हालमें आपने ११९००) की रकम वीरसेवामन्दिरको नक़द प्रदान की है। इस महती उदारता और सरस्वती-सेवाकी उत्कट भावनाके लिये आप भारी धन्यवादके पात्र हैं।

जुगलकिशोर मुख्तार

वीरसेवामन्दिरको प्राप्त अन्य सहायता

गत किरणमें प्रकाशित सहायताके बाद वीरसेवामन्दिरको जो अन्य सहायता प्राप्त हुई है वह निम्न प्रकार है और उसके लिये दातारमहानुभाव धन्यवादके पात्र हैं:—

५००) ला० कपूरचन्द धूपचन्दजी जैन, कानपुर (दशलक्षणपर्वके उपलक्षमें)
५१) ला० चन्दनलाल गोपीचन्दजी जैन, कानपुर (दशलक्षणपर्वके उपलक्षमें)
१७६) दिगम्बर जैन सभा शिमला, (दशलक्षणपर्वके उपलक्षमें) मार्फत पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्यके, जिसमें २५) सफर खर्चके शामिल हैं।
१०२) दि० जैन समाज शाहगढ़, जिला सागर (दशलक्षणपर्वके उपलक्षमें) मार्फत पं० परमानन्द शास्त्रीके, जिसमें ४१) सफर खर्चके शामिल हैं।
१०१) श्रीमती पद्मावतीदेवीजी धर्मपत्नी साहू सुमतप्रसादजी नजीबाबाद (चि० पुत्र जिनेन्द्रकुमारके विवाहोपलक्षमें निकाले हुए दानमेंसे)।
५) दिगम्बर जैन पञ्चायत किशनगढ़, जि. जयपुर (दशलक्षणपर्वके उपलक्षमें)।

९३५)

अधिष्ठाता 'वीरसेवामन्दिर'

अनेकान्तको प्राप्त सहायता

गत किरण नं० ६में प्रकाशित सहायताके बाद अनेकान्तको जो सहायता प्राप्त हुई है वह निम्न प्रकार है और उसके लिये दातारमहानुभाव धन्यवादके पात्र हैं

१०) ला० मुन्नीलालजी मुरादाबाद व ला० बब्बूलाल जी आगरा (विवाहोपलक्षमें) मा. पं. विष्णुकान्त
५) ला० दीपचन्दजी पांड्या, छिन्दवाड़ा (विवाहोपलक्षमें)
५) ला० बसन्तलालजी जैन जयपुर (दशलक्षणपर्वके उपलक्षमें)।
५) दि० जैन पञ्चायत, गया (दशलक्षणपर्वके उपलक्षमें) मार्फत मोहनलालजी जैन मन्त्री।

२५)

व्यवस्थापक 'अनेकान्त'

अनेकान्तकी सहायताका सदुपयोग

अनेकान्तपत्रको जो सहायता विवाह-शादी आदिके शुभ अवसरोंपर भेजी जाती है उसका बड़ा ही अच्छा सदुपयोग किया जाता है। उस सहायतामें अजैन विद्वानों, लायब्रेरियों, गरीब जैन विद्यार्थियों तथा असमर्थ जैन संस्थाओंको अनेकान्त फ्री (बिना मूल्य) अथवा रियायती मूल्य ३) रु०में भेजा जाता है। इससे दातारोंको दोहरा लाभ होता है—इधर वे अनेकान्तके सहायक बनकर पुण्य तथा यशका अर्जन करते हैं और उधर उन दूसरे सज्जनोंके ज्ञानार्जनमें सहायक होते हैं, जिन्हें यह पत्र उनकी सहायतासे पढ़नेको मिलता है। अतः इस दृष्टिसे अनेकान्तको सहायता भेजने-भिजवानेकी ओर समाजका बराबर लक्ष्य रहना चाहिये और कोई भी शुभ अवसर इसके लिये चूकना नहीं चाहिये।

व्यवस्थापक 'अनेकान्त'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

वार्षिक मूल्य ४)

एक किरणका मूल्य ।)

वर्ष ९ किरण ८	वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम), सरसावा, जिला सहारनपुर श्रावणशुक्ल, वीरनिर्वाण-संवत २४७४, विक्रम-संवत् २००५	अगस्त १९४८

समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने

युक्त्यनुशासन

मिथोऽनपेक्षाः पुरुषार्थ-हेतु-
र्नांशा न चांशी पृथगस्ति तेभ्यः ।
परस्परेक्षाः पुरुषार्थ-हेतु-
र्दृष्टा नयास्तद्वदसि-क्रियायाम् ॥५०॥

'(वस्तुको अनन्तधर्मविशिष्ट मानकर यदि यह कहा जाय कि वे धर्म परस्पर-निरपेक्ष ही हैं और धर्मी उनसे पृथक् ही है तो यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि) जो अंश-धर्म अथवा वस्तुके अवयव परस्पर-निरपेक्ष हैं वे पुरुषार्थके हेतु नहीं हो सकते; क्योंकि उस रूपमें उपलभ्यमान नहीं हैं—जो जिस रूपमें उपलभ्यमान नहीं वह उस रूपमें व्यवस्थित भी नहीं होता, जैसे अग्नि शीतताके साथ उपलभ्यमान नहीं है तो वह शीततारूपमें व्यवस्थित भी नहीं होती । परस्परनिरपेक्ष सत्वादिक धर्म अथवा अवयव पुरुषार्थहेतुतारूपसे उपलभ्यमान नहीं हैं, अतः पुरुषार्थहेतुतारूपसे व्यवस्थित नहीं होते । यह युक्त्यनुशासन प्रत्यक्ष और आगमसे अविरुद्ध है ।'

'जो अंश-धर्म परस्पर-सापेक्ष हैं वे पुरुषार्थके हेतु हैं; क्योंकि उस रूपमें देखे जाते हैं—जो जिस रूपमें देखे जाते हैं वे उसी रूपमें व्यवस्थित होते हैं, जैसे दहन (अग्नि) दहनताके रूपमें देखी जाती है और इसलिये तद्रूपमें व्यवस्थित होती है; परस्पर-सापेक्ष अंश स्वभावतः पुरुषार्थहेतुतारूपसे देखे जाते हैं और इसलिये पुरुषार्थहेतुरूपसे व्यवस्थित हैं । यह स्वभावकी उपलब्धि है ।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'(इसी तरह) अंशी—धर्मी अथवा अवयवी—अंशोंसे—धर्मों अथवा अवयवोंसे—पृथक् नहीं है; क्योंकि उसरूपमें उपलभ्यमान नहीं है—जो जिस रूपमें उपलभ्यमान नहीं वह उसमें नास्तिरूप ही है, जैसे अग्नि शीततारूपसे उपलभ्यमान नहीं है अतः शीततारूपसे उसका अभाव है। अंशोंसे अंशीका पृथक् होना सर्वदा अनुपलभ्यमान है अतः अंशोंसे पृथक् अंशीका अभाव है। यह स्वभावकी अनुपलब्धि है। इसमें प्रत्यक्षतः कोई विरोध नहीं है, क्योंकि परस्पर विभिन्न पदार्थों सह्याचल-विन्ध्याचलादि जैसोंके अंश-अंशीभावका दर्शन नहीं होता। आगम-विरोध भी इसमें नहीं है; क्योंकि परस्पर विभिन्न अर्थोंके अंश-अंशीभावका प्रतिपादन करनेवाले आगमका अभाव है और जो आगम परस्पर विभिन्न पदार्थोंके अंश-अंशीभावका प्रतिपादक है वह युक्ति-विरुद्ध होनेसे आगमाभास सिद्ध है।'

'अंश-अंशीकी तरह परस्परसापेक्ष नय—नैगमादिक—भी (सत्तालक्षणा) असिक्रियामें पुरुषार्थके हेतु हैं; क्योंकि उस रूपमें देखे जाते हैं—उपलभ्यमान हैं। —इससे स्थितिग्राहक द्रव्यार्थिकनयके भेद नैगम, संग्रह, व्यवहार और प्रतिक्षण उत्पाद-व्ययके ग्राहक पर्यायार्थिकनयके भेद ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत ये सब परस्परमें सापेक्ष होते हुए ही वस्तुका जो साध्य अर्थक्रिया-लक्षण-पुरुषार्थ है उसके निर्णयके हेतु हैं—अन्यथा नहीं। इस प्रकार प्रत्यक्ष और आगमसे अविरोधरूप जो अर्थका प्ररूपण सत्रूप है वह सब प्रतिक्षण ध्रौव्योत्पाद-व्ययात्मक है; अन्यथा सत्पना बनता ही नहीं। इस प्रकार युक्त्यनुशासनको उदाहृत जानना चाहिये।'

एकान्त-धर्माऽभिनिवेश-मूला
रागादयोऽहंकृतिजा जनानाम्।
एकान्त-हानाच्च स यत्तदेव
स्वाभाविकत्वाच्च समं मनस्ते ॥५१॥

'(जिन लोगोंका ऐसा खयाल है कि जीवादिवस्तुका अनेकान्तात्मकरूपसे निश्चय होनेपर स्वात्माकी तरह परात्मामें भी राग होता है—दोनोंमें कथंचित् अभेदके कारण, तथा परात्माकी तरह स्वात्मामें भी द्वेष होता है—दोनोंमें कथंचित् भेदके कारण, और राग-द्वेषके कार्य ईर्ष्या, असूया, मद, मायादिक दोष प्रवृत्त होते हैं, जो कि संसारके कारण हैं, सकल विक्षोभके निमित्तभूत हैं तथा स्वर्गाऽपवगके प्रतिबन्धक हैं। और वे दोष प्रवृत्त होकर मनके समत्वका निराकरण करते हैं—उसे अपनी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित न रहने देकर विषम-स्थितिमें पटक देते हैं—, मनके समत्वका निराकरण समाधिको रोकता है, जिससे समाधि-हेतुक निर्वाण किसीके नहीं बन सकता। और इसलिये जिनका यह कहना है कि मोक्षके कारण समाधिरूप मनके समत्वकी इच्छा रखने वालेको चाहिये कि वह जीवादि वस्तुको अनेकान्तात्मक न माने' वह भी ठीक नहीं है; क्योंकि) वे राग-द्वेषादिक —जो मनकी समताका निराकरण करते हैं—एकान्त-धर्माभिनिवेश-मूलक होते हैं—एकान्तरूपसे निश्चय किये हुए (नित्यत्वादि) धर्ममें अभिनिवेश—मिथ्या श्रद्धान[1] उनका मूलकारण होता है—और (मोही-मिथ्यादृष्टि) जीवोंकी अहंकृतिसे—अहंकार तथा उसके साथी ममकारसे[2]—वे उत्पन्न होते हैं। अर्थात् उन अहंकार-ममकार भावोंसे ही उनकी उत्पत्ति है जो मिथ्यादर्शनरूप मोह-राजाके सहकारी हैं—मन्त्री हैं[3], अन्यसे नहीं—दूसरे अहंकार-ममकारके भाव उन्हें जन्म देनेमें असमर्थ हैं। और (सम्यग्दृष्टि-जीवोंके)

---

१ चूंकि प्रमाणसे अनेकान्तात्मक वस्तुका ही निश्चय होता है और सम्यक् नयसे प्रतिपक्षकी अपेक्षा रखनेवाले एकान्तका व्यवस्थापन होता है अतः एकान्ताभिनिवेशका नाम मिथ्यादर्शन या मिथ्याश्रद्धान है, यह प्रायः निर्णीत है।

२ 'मैं इसका स्वामी' ऐसा जो जीवका परिणाम है वह 'अहंकार' है और 'मेरा यह भोग्य' ऐसा जो जीवका परिणाम है वह 'ममकार' कहलाता है। अहंकारके साथ सामर्थ्यसे ममकार भी यहाँ प्रतिपादित है।

३ कहा भी है—"ममकाराऽहंकारौ सचिवाविव मोहनीयराजस्य।
रागादि-सकलपरिकर-परिपोषण-तत्परौ सततम् ॥१॥"
—युक्त्यनुशासनटीकामें उद्धृत।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकान्तकी हानिसे—एकान्त धर्माभिनिवेशरूप मिथ्या-दर्शनके अभावसे—वह एकान्ताभिनिवेश उसी अनेकान्तके निश्चयरूप सम्यग्दर्शनत्वको धारण करता है जो आत्माका वास्तविक रूप है; क्योंकि एकान्ताभिनिवेशका जो अभाव है वही उसके विरोधी अनेकान्तके निश्चयरूप सम्यग्दर्शनका सद्भाव है। और चूँकि यह एकान्ताभिनिवेशका अभावरूप सम्यग्दर्शन आत्माका स्वाभाविक रूप है अतः (हे वीर भगवन्!) आपके यहाँ—आपके युक्त्यनुशासनमें—(सम्यग्दृष्टिके) मनका समत्व ठीक घटित होता है। वास्तवमें दर्शनमोहके उदयरूप मूलकारणके होते हुए चारित्र-मोहके उदयमें जो रागादिक उत्पन्न होते हैं वे ही जीवोंके अस्वाभाविक परिणाम हैं; क्योंकि वे औदयिक भाव हैं और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो परिणाम दर्शनमोहके नाश, चारित्रमोहकी उदय-हानि और रागादिके अभावसे होते हैं वे आत्मरूप होनेसे जीवोंके स्वाभाविक परिणाम हैं—किन्तु पारिणामिक नहीं; क्योंकि पारिणामिक भाव कर्मोंके उपशमादिकी अपेक्षा नहीं रखते। ऐसी स्थितिमें असंयत सम्यग्दृष्टिके भी स्वानुरूप मनःसाम्यकी अपेक्षा मनका सम होना बनता है; क्योंकि उसके संयमका सर्वथा अभाव नहीं होता। अतः अनेकान्त-रूप युक्त्यनुशासन रागादिकका निमित्तकारण नहीं, वह तो मनकी समताका निमित्तभूत है।

प्रमुच्यते च प्रतिपक्ष-दूषी
जिन! त्वदीयैः पटुसिंहनादैः।
एकस्य नानात्मतया ज्ञ-वृत्ते-
स्तौ बन्ध-मोक्षौ स्वमतादबाह्यौ ॥५२॥

'(यदि यह कहा जाय कि अनेकान्तवादीका भी अनेकान्तमें राग और सर्वथा एकान्तमें द्वेष होनेसे उसका मन सम कैसे रह सकता है, जिससे मोक्ष बन सके? मोक्षके अभावमें बन्धकी कल्पना भी नहीं बनती। अथवा मनका सदा सम रहना माननेपर बन्ध नहीं बनता और बन्धके अभावमें मोक्ष घटित नहीं हो सकता, जो कि बन्धपूर्वक होता है। अतः बन्ध और मोक्ष दोनों ही अनेकान्तवादीके स्वमतसे बाह्य ठहरते हैं—मनकी समता और असमता दोनों ही स्थितियोंमें उनकी उपपत्ति नहीं बन सकती—तो यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि) *जो प्रतिपक्षदूषी है*—प्रतिद्वन्द्वीका सर्वथा निराकरण करनेवाला एकान्ताग्रही है—*वह तो हे वीर जिन! आप* (अनेकान्तवादी)के *एकाऽनेकरूपता जैसे पटुसिंहनादोंसे*—निश्चयात्मक एवं सिंहगर्जनोंकी तरह अबाध्य ऐसे युक्ति-शास्त्राविरोधी आगमवाक्योंके प्रयोगद्वारा—*प्रमुक्त ही किया जाता है*—वस्तुतत्त्वका विवेक कराकर अतत्त्वरूप एकान्ताग्रहसे उसे मुक्ति दिलाई जाती है—*क्योंकि प्रत्येक वस्तु नानात्मक है, उसका नानात्मकरूपसे निश्चय ही सर्वथा एकान्त प्रमोचन है*। ऐसी दशामें अनेकान्तवादीका एकान्तवादीके साथ कोई द्वेष नहीं हो सकता और चूँकि वह प्रतिपक्षका भी स्वीकार करनेवाला होता है इसलिये स्वपक्षमें उसका सर्वथा राग भी नहीं बन सकता। वास्तवमें तत्त्वका निश्चय ही राग नहीं होता। यदि तत्त्वका निश्चय ही राग होवे तो क्षीणमोहीके भी रागका प्रसङ्ग आएगा, जोकि असम्भव है, और न अतत्त्वके व्यवच्छेदको ही द्वेष प्रतिपादित किया जा सकता है, जिसके कारण अनेकान्तवादीका मन सम न रहे। अतः अनेकान्तवादीके मनकी समताके निमित्तसे होनेवाले मोक्षका निषेध कैसे किया जा सकता है? और मनका समत्व सर्वत्र और सदाकाल नहीं बनता, जिससे राग-द्वेषके अभावसे बन्धके अभावका प्रसङ्ग आवे; क्योंकि गुणस्थानोंकी अपेक्षासे किसी तरह, कहींपर और किसी समय कुछ पुण्य-बन्धकी उपपत्ति पाई जाती है। अतः *बन्ध और मोक्ष दोनों अपने (अनेकान्त) मतसे*—जोकि अनन्तात्मक तत्त्व-विषयको लिये हुए है—*बाह्य नहीं हैं*—उसीमें वस्तुतः उनका सद्भाव है—*क्योंकि बन्ध और मोक्ष दोनों ज्ञवृत्ति हैं*—अनेकान्तवादियोंद्वारा स्वीकृत ज्ञाता आत्मामें ही उनकी प्रवृत्ति है। और इसलिये सांख्योंद्वारा स्वीकृत प्रधान(प्रकृति)के अनेकान्तात्मक होनेपर भी उसमें वे दोनों घटित नहीं हो सकते; क्योंकि प्रधान (प्रकृति)-के अज्ञता होती है—वह ज्ञाता नहीं माना गया है।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मान्तराऽभाव-समानता न
वागास्पदं स्वाऽऽश्रय-भेद-हीना ।
भावस्य सामान्य-विशेषवत्त्वा-
दैक्ये तयोरन्यतरन्निरात्म ॥५३॥

'(यदि यह कहा जाय कि एकके नानात्मक अर्थके प्रतिपादक शब्द पटुसिंहनाद प्रसिद्ध नहीं है; क्योंकि बौद्धोंके अन्याऽपोहरूप जो सामान्य है उसके वागास्पदता--वचनगोचरता—है, और वचनोंके वस्तु-विषयत्वका असम्भव है, तो यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि) आत्मान्तरके अभावरूप—आत्मस्वभावसे भिन्न अन्य-अन्य स्वभावके अपोहरूप—जो समानता (सामान्य) अपने आश्रयरूप भेदोंसे हीन (रहित) है वह वागास्पद—वचनगोचर—नहीं होती; क्योंकि वस्तु सामान्य और विशेष दोनों धर्मोंको लिये हुए है।'

(यदि यह कहा जाय कि पदार्थके सामान्य-विशेषवान् होनेपर भी सामान्यके ही वागास्पदता युक्त है; क्योंकि विशेष उसीका आत्मा है, और इस तरह दोनोंकी एकरूपता मानी जाय, तो) सामान्य और विशेष दोनोंकी एकरूपता स्वीकार करनेपर एकके निरात्म (अभाव) होनेपर दूसरा भी (अविनाभावी होनेके कारण) निरात्म (अभावरूप) हो जाता है—और इसतरह किसीका भी अस्तित्व नहीं बन सकता, अतः दोनोंकी एकता नहीं मानी जानी चाहिए।'

अमेयमश्लिष्टममेयमेव
भेदेऽपि मद्वृत्त्यपवृत्तिभावात् ।
वृत्तिश्च कृत्स्नांश-विकल्पतो न
मानं च नाऽनन्त-समाश्रयस्य ॥५४॥

'(यदि यह कहा जाय कि आत्मान्तराभावरूप—अन्यापोहरूप—सामान्य वागास्पद नहीं है, क्योंकि वह अवस्तु है; बल्कि वह सर्वगत सामान्य ही वागास्पद है जो विशेषोंसे अश्लिष्ट है—किसी भी प्रकारके भेदको साथमें लिये हुए नहीं है—तो ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि) जो अमेय है—नियत देश, काल और आकारकी दृष्टिसे जिसका कोई अन्दाजा नहीं लगाया जासकता—और अश्लिष्ट है—किसी भी प्रकार के विशेष (भेद) को साथमें लिये हुए नहीं है—वह (सर्वव्यापी, नित्य, निराकाररूप सत्त्वादि) सामान्य अमेय-अप्रमेय ही है—किसी भी प्रमाणसे जाना नहीं जासकता। भेदके माननेपर भी—सामान्यको स्वाश्रयभूत द्रव्यादिकोंके साथ भेदरूप स्वीकार करने पर भी—सामान्य प्रमेय नहीं होता; क्योंकि उन द्रव्यादिकोंमें उसकी वृत्तिकी अपवृत्ति (व्यावृत्ति)का सद्भाव है—सामान्यकी वृत्ति उनमें मानी नहीं गई है, और जब तक सामान्यकी अपने आश्रयभूत द्रव्यादिकोंमें वृत्ति नहीं है तब तक दोनोंका संयोग कुण्डीमें बेरोंके समान ही होसकता है; क्योंकि सामान्यके अद्रव्यपना है तथा संयोगका अनाश्रयपना है और संयोगके द्रव्याश्रयपना है। ऐसी हालतमें सामान्यकी द्रव्यादिकमें वृत्ति नहीं बन सकती।'

'यदि सामान्यकी द्रव्यादिवस्तुके साथ वृत्ति मानी भी जाय तो वह वृत्ति भी न तो सामान्यको कृत्स्न (निरंश) विकल्परूप मानकर बनती है और न अंश विकल्परूप।—क्योंकि अंशकल्पनासे रहित कृत्स्न विकल्परूप सामान्यकी देश और कालसे भिन्न व्यक्तियोंमें युगपत्वृत्ति सिद्ध नहीं की जासकती। उससे अनेक सामान्योंकी मान्यताका प्रसङ्ग आता है, जो उक्त सिद्धान्तमान्यताके साथ माने नहीं गये हैं; क्योंकि एक तथा अनंशरूप सामान्यका उन सबके साथ युगपत् योग नहीं बनता। यदि यह कहा जाय कि सामान्य भिन्न देश और कालके व्यक्तियोंके साथ युगपत् सम्बन्धवान् है, क्योंकि वह सर्वगत, नित्य और अमूर्त है, जैसे कि आकाश; तो यह अनुमान भी ठीक नहीं है। इससे एक तो साधन इष्टका विघातक हो जाता है अर्थात् जिस प्रकार वह भिन्न देश-कालके व्यक्तियोंके साथ सम्बन्धिपनको सिद्ध करता है उसी प्रकार वह सामान्यके आकाशकी तरह सांशपनको भी सिद्ध करता है जोकि इष्ट नहीं है; क्योंकि सामान्यको निरंश माना गया है। दूसरे, सामान्यके निरंश होनेपर उसका युगपत् सर्वगत

[शेषांश पृष्ठ ३२० पर]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वादीभसिंहसूरिकी एक अधूरी अपूर्व कृति

स्याद्वादसिद्धि

(लेखक—न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी, कोठिया)

गत वर्ष श्रीयुत् पं० के० भुजबलीजी मूडबिद्रीकी कृपासे हमें वादीभसिंहसूरिकी एक कृति प्राप्त हुई थी, जिसका नाम है 'स्याद्वादसिद्धि' और जिसके लिये हम उनके आभारी हैं।

यह जैनदर्शनका एक महत्वपूर्ण एवं उच्चकोटिका अपूर्व ग्रन्थरत्न है। सुप्रसिद्ध जैनतार्किक भट्टाकलङ्क-देवके न्यायविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, लघीयस्त्रय आदि-की तरह यह कारिकात्मक प्रकरण-ग्रन्थ है। दुःख है कि विद्यानन्दकी 'सत्यशासनपरीक्षा' और हेमचन्द्र-की 'प्रमाणमीमांसा' की तरह यह कृति भी अधूरी ही उपलब्ध है। मालूम नहीं, यह अपने पूरे रूपमें और किसी शास्त्रभण्डारमें मौजूद है या नहीं। अथवा, यह ग्रन्थकारकी अन्तिम रचना है, जिसे वे स्वर्गवास होजानेके कारण पूरी नहीं कर सके। फिर भी यह प्रसन्नताकी बात है कि उपलब्ध रचनामें १३ प्रकरण पूरे और १४वाँ प्रकरण अपूर्ण (बहुभाग), इस तरह लगभग १४ प्रकरण पाये जाते हैं और इन सब प्रकरणोंमें अकलङ्कदेवके न्यायविनिश्चयसे, जिसकी कारिकाओंका प्रमाण ४८० है, २१ कारिकाएँ अधिक अर्थात् ५०१ जितनी कारिकाएँ सन्निबद्ध हैं। इससे इस ग्रन्थकी महत्ता और विशालता जानी जा सकती है। यदि यह अपने पूर्णरूपमें होता तो कितना विशाल होता, यह कल्पना ही बड़ी सुखद प्रतीत होती है। दुर्भाग्यसे यह अभी तक विद्वत्संसारके सामने नहीं आ सका और इसलिये अप्रकाशित एवं अपरिचित दशामें पड़ा चला आ रहा है।

ग्रन्थकी भाषा और रचना शैली

यद्यपि दार्शनिक ग्रन्थोंकी भाषा प्रायः दुरूह और गम्भीर होती है। पर इस कृतिकी भाषा अत्यन्त, प्रसन्न विशद और बिना किसी विशेष कठिनाईके अर्थबोध करानेवाली है। ग्रन्थको आप सहजभावसे पढ़ते जाइये, अर्थबोध होता जायगा। हाँ, कुछेक स्थल ऐसे जरूर हैं जहाँ पाठकको अपना दिमाग लगाना पड़ता है और जिससे ग्रन्थकी प्रौढता, विशिष्टता एवं अपूर्वताका भी कुछ परिचय मिल जाता है। भाषा-के सुन्दर और सरल पद-वाक्योंके प्रयोगोंसे समूचे ग्रन्थकी रचना भी प्रशस्त एवं हृद्य है। चूँकि ग्रन्थकार उत्कृष्ट कोटिके दार्शनिक और वाग्मीके अतिरिक्त उच्च-कोटिके कवि भी थे और इस लिये उनकी यह रचना कवित्व-कलासे परिपूर्ण है। यह ग्रन्थकारकी स्वतन्त्र पद्यात्मक रचना है—किसी गद्य या पद्यरूप मूलकी व्याख्यात्मक रचना नहीं है। इस प्रकारकी रचना रचनेकी प्रेरणा उन्हें अकलङ्कदेवके न्यायविनि-श्चयादि और शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहादिसे मिली जान पड़ती है। बौद्धदर्शनमें धर्मकीर्ति (ई० ६२५)की सन्तानान्तरसिद्धि, कल्याणरक्षित (ई० ७००)की बाह्यार्थसिद्धि, धर्मोत्तर (ई० ७२५)की परलोकसिद्धि तथा क्षणभङ्गसिद्धि, और शङ्करानन्द (ई० ८००) की अपोहसिद्धि, प्रतिबन्धसिद्धि जैसे सिद्ध्यन्त नामवाले ग्रन्थ रचे गये हैं। और इनसे भी पहले स्वामी समन्तभद्रकी जीवसिद्धि रची गई है। संभवतः ग्रन्थकारने अपनी 'स्याद्वादसिद्धि' भी उसी तरह सिद्ध्यन्त नामसे रची है।

ग्रन्थका मङ्गलाचरण और उद्देश्य

ग्रन्थको प्रारम्भ करनेके पहले ग्रन्थकारने अपनी पूर्वपरम्परानुसार एक कारिकाद्वारा ग्रन्थका मङ्गला-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरण और दूसरी कारिकाद्वारा ग्रन्थका उद्देश्य निम्न प्रकार प्रदर्शित किया है—

"..........................द्धनाय स्वामिने विश्ववेदिने ।
नित्यानंन्द-स्वभावाय भक्त-सारूप्यदायिने ॥१॥
सर्वे सौख्यार्थितायां च तदुपाय-पराङ्मुखाः ।
तदुपायं ततो वक्ष्ये न हि कार्यमहेतुकम् ॥ २ ॥"

यहाँ पहली मङ्गल-कारिकामें प्रथम पाद त्रुटित है और जो इस प्रकार होना चाहिए—'नमः श्रीवर्द्ध-मानाय'। अक्षर और मात्राओंकी दृष्टिसे यह पाठ ठीक बैठ जाता है। यदि यही शुद्ध पाठ हो तो इस कारिकाका अर्थ इस प्रकार होता है—

'श्री अन्तिम तीर्थङ्कर वर्द्धमानस्वामीके लिये नमस्कार है जो विश्ववेदी (सर्वज्ञ) हैं, नित्यानन्द स्वभाव (अनन्तसुखात्मक) हैं और अपने भक्तोंको समानता (बराबरी) देनेवाले हैं—जो उनकी उपासना करते हैं वे उन जैसे बन जाते हैं।'

दूसरी कारिकामें कहा गया है कि 'समस्त प्राणी सुख चाहते हैं, परन्तु वे सुखका सच्चा उपाय नहीं जानते। अतः इस ग्रन्थद्वारा सुखके उपायका कथन करूँगा; क्योंकि बिना कारणके कार्य उत्पन्न नहीं होता।'

विषय-परिचय

जान पड़ता है कि ग्रन्थकार इस ग्रन्थकी रचना बौद्धविद्वान् शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहकी तरह विशाल रूपमें करना चाहते थे और उन्हींकी तरह इसके अनेक प्रकरण बनाना चाहते थे। यही कारण है कि जो उपलब्ध रचना है और जो समग्र ग्रन्थका संभवतः ¾ भाग है उसमें प्रायः १४ प्रकरण ही उपलब्ध हैं। जैसाकि इन प्रकरणोंके समाप्तिसूचक पुष्पिकावाक्योंसे प्रकट है और जो निम्न प्रकार हैं:—

(१) 'इति श्रीवादीभसिंहसूरिविरचितायां स्याद्वादसिद्धौ चार्वाकं प्रति जीवसिद्धिः।'—पद्य १से २४।

(२) 'इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचितायां स्याद्वादसिद्धौ बौद्धवादिनं प्रति स्याद्वादानभ्युपगमे धर्म-कर्तुः फलभोक्तृत्वाभावसिद्धिः। —पद्य २५से ६८।

(३) 'इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचितायां स्याद्वादसिद्धौ क्षणिकवादिनं प्रति युगपदनेकान्तसिद्धिः।' —पद्य ६९-१४२।

(४) 'इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचितायां स्याद्वादसिद्धौ क्षणिकवादिनं प्रति क्रमानेकान्तसिद्धिः।' —कारिका १४३-२३१।

(५) 'इति नित्यवादिनं प्रति धर्मकर्तुर्भोक्तृत्वाभावसिद्धिः।' —का० २३२-२६३।

(६) 'इति नित्यैकान्तप्रमाणे सर्वज्ञाभावसिद्धिः।' —का० २६४-२८५।

(७) 'इति जगत्कर्तुरभावसिद्धिः।' —का० २८६-३०७।

(८) 'इति भगवदर्हन्नेव सर्वज्ञ इति सिद्धिः।' —का० ३०८-३२९।

(९) 'इत्यर्थापत्तेर प्रामाण्यसिद्धिः।' —का० ३३०-३५२।

(१०) 'इति वेदपौरुषेयत्वसिद्धिः।' का० ३५३-३९२

(११) 'इति परतः प्रामाण्यसिद्धिः।' का. ३९३-४१९

(१२) 'इत्यभावप्रमाणदूषणसिद्धिः।' का. ४२०-४२४

(१३) 'इति तर्कप्रामाण्यसिद्धिः।' का. ४२५-४४५

(१४) यह प्रकरण का० ४४६ से का० ५०१ तक उपलब्ध है और अधूरा है। जैसा कि उसकी निम्न अन्तिम कारिकासे स्पष्ट है—

न संबध्नात्यसंबद्धः परत्रैवमदर्शनात् ।
समवेतो हि संयोगो द्रव्यसंबन्धकृन्मतः ॥५०१॥

इन प्रकरणोंमें पहले 'जीवसिद्धि' प्रकरणमें चार्वाकको लक्ष्य करके सहेतुक जीव—आत्माकी सिद्धि की गई है और आत्माको भूतसंघातका कार्य माननेका निरसन किया गया है[१]।

दूसरे 'फलभोक्तृत्वाभावसिद्धि' प्रकरणमें क्षणिकवादी बौद्धोंके मतमें दूषण दिया गया है कि क्षणिक चित्तसन्तानरूप आत्मा धर्मादिजन्य स्वर्गादि फलका भोक्ता नहीं बन सकता; क्योंकि धर्मादि करनेवाला चित्त क्षणध्वंसी है—वह उसी समय नष्ट हो जाता है

१ 'सत्येवाऽऽत्मनि धर्मे च सौख्योपाये सुखार्थिभिः ।
धर्म एव सदा कार्यो न हि कार्यमकारणे ॥२४॥'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और यह नियम है कि 'कर्ता ही फलभोक्ता होता है।' अतः आत्माको कथञ्चित् नाशशील—सर्वथा नाशशील नहीं—स्वीकार करना चाहिए। और तब कर्तृत्व और फलभोक्तृत्व दोनों एक (आत्मा) के बन सकते हैं[1]।

तीसरे 'युगपदनेकान्तसिद्धि' और चौथे 'क्रमानेकान्तसिद्धि' नामके प्रकरणोंमें वस्तुको युगपत् और क्रमसे वास्तविक अनेकधर्मात्मक सिद्ध किया गया है और बौद्धाभिमत संतान तथा संवृतिकी युक्तिपूर्ण मीमांसा करते हुए चित्तक्षणोंको निरन्वय एवं निरंश स्वीकार करनेमें एक मार्केका दूषण यह दिया गया है कि जब चित्तक्षणोंमें अन्वय नहीं है—वे सर्वथा भिन्न हैं तो दाताको ही स्वर्ग हो और वधकको ही नरक हो' यह नियम नहीं बन सकता। प्रत्युत इसके विपरीत भी सम्भव है—दाताको नरक और वधकको स्वर्ग क्यों न हो[2] ?

पाँचवें भोक्तृत्वाभावसिद्धि, छठे सर्वज्ञाभावसिद्धि, सातवें जगत्कर्तृत्वाभावसिद्धि, आठवें अर्हत्सर्वज्ञसिद्धि, नवें अर्थापत्तिअप्रमाणसिद्धि, दशवें वेदपौरुषेयत्वसिद्धि, ग्यारहवें परतः प्रामाण्यसिद्धि, बारहवें अभावप्रमाणदूषणसिद्धि और तेरहवें तर्कप्रामाण्यसिद्धि नामक प्रकरणोंमें अपने-अपने नामानुसार विषय वर्णित है। चउदहवें प्रकरणमें वैशेषिकके गुण-गुणीभेदादि और समवायादि पदार्थोंका समालोचन किया गया है[3]। सम्भव है ग्रन्थका जो शेष भाग अनुपलब्ध है उसमें ग्रन्थकारने सांख्य, नैयायिक आदि दर्शनोंकी मीमांसा की हो अथवा करनेका विचार रखा हो। अस्तु

१ 'ततः कथञ्चिन्नाशित्वे कर्त्रा लब्धं फलं भवेत्।
तन्नाशो नेष्यते तस्माद्धर्मो कार्योऽस्तु सौगतैः ॥६८॥'

२ 'तथा च दातुः स्वर्गः स्यान्नरको हन्तुरित्ययम्।
नियमो न भवेत् किन्तु विपर्यासोऽपि सम्भवेत् ॥ ३-११६'

३ 'गुणाद्यभेदो गुण्यादेस्तथा निर्बाधबोधतः।
तद्वत्तस्यान्यथा हानेर्गुणादेरिव संख्यया ॥१४-४४६॥
समवायान्न तद्बुद्धिरिहेदंप्रत्ययो ह्यतः।
दृष्टान्ते तददृष्टेश्च तत्सम्बन्धेऽप्ययोगतः ॥ १४-४४७॥'

अन्य ग्रन्थकारों और उनके ग्रन्थवाक्योंका उल्लेख

ग्रन्थकारने इस रचनामें अन्य ग्रन्थकारों और उनके ग्रन्थवाक्योंका भी उल्लेख किया है। प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिलभट्ट और प्रभाकरका नामोल्लेख करके उनके वेदवाक्यार्थका खण्डन किया है। यथा—

नियोग-भावनारूपं भिन्नमर्थद्वयं तथा।
भट्ट-प्रभाकराभ्यां हि वेदार्थत्वेन निश्चितम् ॥६-२८२॥

इसी तरह अन्य तीन जगहोंपर कुमारिलभट्टके मीमांसाश्लोकवार्तिकसे 'वार्त्तिक' नामसे अथवा बिना उसके नामसे निम्न तीन कारिकाएँ उद्धृत हुई हैं और उनकी आलोचना की गई है—

(क) *स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम्।*
न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन शक्यते ॥
[मी० श्लो० सू० २, का० ४७]

इति *वार्तिकसद्भावात्*.................. । ११-३९३ ॥

(ख) *शब्दे दोषोद्भवस्तावद्वक्त्रधीन इति स्थितिः।*
तदभावः क्वचित्तावद्गुणवद्वक्तृकत्वतः ॥
[मी० श्लो० सू० २, का० ६२]

इति *वार्तिकतः शब्द*.................... । ११-४११॥

(ग) *यद्वेदाध्ययनं सर्वं तदध्ययनपूर्वकम्।*
तदध्ययनवाच्यत्वादमने भवेदिति(दधुनाध्यनं यथा)॥
[मी० श्लो० अ० ७ का० ३५५]

इत्यस्मादनुमानात्स्याद्वेदस्यापौरुषेयता ।१०-३७९॥

इसी तरह प्रशस्तकर, दिग्नाग, धर्मकीर्ति जैसे विद्वानोंके पद-वाक्यादिकोंके भी उल्लेख इसमें पाये जाते हैं।

ग्रन्थकर्ता और उनका समय

ग्रन्थकर्ता और उनके समयपर भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। ये ग्रन्थकार वादीभसिंहसुरि कौनसे वादीभसिंहसूरि हैं और कब हुए हैं—उनका क्या समय है? नीचे इन्हीं दोनों बातोंपर विचार किया जाता है।

(१) आदिपुराणके कर्ता जिनसेनस्वामीने, जिनका समय ई० ८३८ है, अपने आदिपुराणमें एक 'वादिसिंह' नामके आचार्यका स्मरण किया है और उन्हें उत्कृष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोटिका कवि, उत्कृष्टकोटिका वाग्मी तथा उत्कृष्ट कोटिका गमक बतलाया है। यथा—

कवित्वस्य परा सीमा वाग्मितस्य परं पदम् ।
गमकत्वस्य पर्यन्तो वादिसिंहोऽर्च्यते न कैः ॥

(२) पार्श्वनाथचरितकार वादिराजसूरि (ई. १०२५) ने भी पार्श्वनाथचरितमें 'वादिसिंह'का समुल्लेख किया है और उन्हें स्याद्वादवाणीकी गर्जना करनेवाला (स्याद्वादविजेता) तथा दिग्नाग और धर्मकीर्तिके अभिमानको चूर-चूर करनेवाला प्रकट किया है। यथा—

स्याद्वादगिरमाश्रित्य वादिसिंहस्य गर्जिते ।
दिङ्नागस्य मदध्वंसे कीर्तिभङ्गो न दुर्घटः[१] ॥

(३) श्रवणबेलगोलाकी मल्लिषेणप्रशस्ति (ई० ११२८) में एक वादीभसिंहसूरि अपरनाम गणभृत् (आचार्य) अजितसेनका गुणानुवाद किया गया है और उन्हें स्याद्वादविद्याके पारगामियोंका आदरपूर्वक सतत वन्दनीय और लोगोंके भारी आन्तर तमको नाश करनेके लिये पृथिवीपर आया दूसरा सूर्य बतलाया गया है। इसके अलावा, उन्हें अपनी गर्जनाद्वारा वादि-गजोंको शीघ्र चुप करके निग्रहरूपी जीर्ण गड्ढेमें पटकनेवाला तथा राजमान्य भी कहा गया है। यथा—

वन्दे वन्दितमादरादहरहस्स्याद्वादविद्या - विदां ।
स्वान्त-ध्वान्त-वितान-धूनन-विधौ भास्वन्तमन्यं भुवि।
भक्त्या त्वाऽजितसेनमानतिकृतां यत्सन्नियोगान्मनः-
पद्मं सद्म भवेद्विकास-विभवस्योन्मुक्त-निद्रा-भरं ॥५४॥
मिथ्या - भाषण - भूषणं परिहरेतौद्धत्यमुन्मुञ्चत,
स्याद्वादं वदतानमेत विनयाद्वादीभकण्ठीरवं ।
नो चेत्तद्गुरुगर्जित-श्रुति-भय-भ्रान्ता स्थ यूयं यत-
स्तूर्णं निग्रहजीर्णकूप-कुहरे वादि-द्विपाः पातिनः॥५५
सकल-भुवनपालानम्रमूर्द्धावबद्ध-
स्फुरित-मुकुट-चूडालीढ-पादारविन्दः ।
मदवदखिल - वादीभेन्द्र - कुम्भप्रभेदी,
गणभृदजितसेनो भाति वादीभसिंह ॥५७॥

—शिलालेख नं० ५४ (६७)

(४) अष्टसहस्रीके टिप्पणकार लघुसमन्तभद्रने भी अपने टिप्पणके प्रारम्भमें एक वादीभसिंहका उल्लेख निम्न प्रकार किया है—

'तदेवं महाभागैस्तार्किकार्कैरुपज्ञातां श्रीमता वादीभसिंहेनोपलालितामाप्तमीमांसामलंचिकीर्षवः स्याद्वादोद्भासिसत्यवाक्यमाणिक्यमकारिकाघटमदेकटकाराः सूरयो विद्यानन्दस्वामिनस्तदादौ प्रतिज्ञाश्लोकमेकमाह—।'

—अष्टसहस्री टि० पृष्ठ १।

यहाँ लघुसमन्तभद्रने वादीभसिंहको समन्तभद्राचार्य रचित आप्तमीमांसाका उपलालन (परिपोषण) कर्ता बतलाया है। यदि लघुसमन्तभद्रका यह उल्लेख अभ्रान्त है तो कहना होगा कि वादीभसिंहने आप्तमीमांसापर कोई महत्वकी टीका लिखी है और उसके द्वारा आप्तमीमांसाका उन्होंने परिपोषण किया है। श्री०पं० कैलाशचंद्रजी शास्त्रीने भी इसकी सम्भावनाकी है[१] और उसमें आचार्य विद्यानन्दके *'अत्र शास्त्रपरिसमाप्तौ केचिदिदं मङ्गलवचनमनुमन्यन्ते'* शब्दोंके साथ उद्धृत किये *'जयति जगति'* आदि पद्यको प्रस्तुत किया है। कोई आश्चर्य नहीं कि विद्यानन्दके पूर्व आप्तमीमांसापर लघुसमन्तभद्रद्वारा उल्लिखित वादीभसिंहने ही टीका रची हो और जिससे हो लघुसमन्तभद्रने उन्हें आप्तमीमांसाका उपलालनकर्ता कहा है और विद्यानन्दने 'केचित्' शब्दोंके साथ उन्हींकी टीकाके उक्त 'जयति' आदि समाप्तिमङ्गलको अष्टसहस्रीके अन्तमें अपने तथा अकलङ्कदेवके समाप्तिमङ्गलके पहले उद्धृत किया है।

---

१ इस श्लोकपरसे पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीको कुछ भ्रम हुआ है। अतएव उन्होंने वादिसिंहको दिग्नाग और धर्मकीर्तिका समकालीन समझते हुए लिखा है कि 'वादिराजने इस श्लोकमें बौद्धाचार्य दिङ्नाग और कीर्ति (धर्मकीर्ति) का ग्रहण करके वादिसिंहको उनका समकालीन बतलाया है।' (न्याय कु. प्र. प्र. पृ. ११२)। पर वास्तवमें वादिराजने वादिसिंहको उक्त बौद्धविद्वानोंका समकालीन नहीं बतलाया। उनके उक्त उल्लेखका इतना ही अभिप्राय है कि दिग्नाग और धर्मकीर्तिको अपनी कृतियोंपर जो अभिमान रहा होगा वह वादिसिंहकी गर्जना—स्याद्वादविद्यासे भरपूर अपनी (स्याद्वादसिद्धि जैसी) कृतियोंसे नष्ट कर दिया गया।

१ न्यायकु० प्र० भा० प्र० पृ० १११।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(५) क्षत्रचूडामणि और गद्यचिन्तामणि काव्य-ग्रन्थोंके कर्ता वादीभसिंहसूरि विद्वत्समाजमें अतिविख्यात और सुप्रसिद्ध हैं।

(६) पं० के० भुजबलीजी शास्त्री[1] ई० १०९० और ई० ११४७ के नं० ३ तथा नं० ३७ के दो शिलालेखोंके[2] आधारपर एक वादीभसिंह (अपर नाम अजितसेन) का उल्लेख करते हैं।

(७) श्रुतसागरसूरिने भी सोमदेवकृत यशस्तिलक (आश्वास २, १२६) की अपनी टीकामें एक वादीभसिंहका निम्न प्रकार उल्लेख किया है और उन्हें सोमदेवका शिष्य कहा है:—

'वादीभसिंहोऽपि मदीयशिष्यः
श्रीवादिराजोऽपि मदीयशिष्यः। इत्युक्तत्वाच्च।'

वादिसिंह और वादीभसिंहके ये सात उल्लेख हैं जो अबतककी खोजके परिणामस्वरूप विद्वानोंको जैनसाहित्यमें मिले हैं। अब देखना यह है कि ये सातों उल्लेख भिन्न भिन्न हैं अथवा एक ?

अन्तिम उल्लेखको प्रेमीजी[3], पं० कैलाशचन्द्रजी[4] आदि विद्वान् अभ्रान्त और विश्वसनीय नहीं मानते। इसमें उनका हेतु है कि न तो वादीभसिंहने ही अपनेको सोमदेवका कहीं शिष्य प्रकट किया और न वादिराजने ही अपनेको उनका शिष्य बतलाया है। प्रत्युत वादीभसिंहने तो पुष्पसेन मुनिको और वादिराजने मतिसागरको अपना गुरु बतलाया है। दूसरे, सोमदेवने उक्त वचन किस ग्रन्थ और किस प्रसङ्गमें कहा, यह सोमदेवके उपलब्ध ग्रन्थोंपरसे ज्ञात नहीं होता। अतः जबतक अन्य प्रमाणोंसे उसका समर्थन नहीं होता तबतक उसे प्रमाणकोटिमें नहीं रखा जा सकता।

अवशिष्ट छह उल्लेखोंमें, मेरा विचार है कि तीसरा और छठा ये दो उल्लेख अभिन्न हैं तथा उन्हें एक दूसरे वादीभसिंहके होना चाहिए, जिनका दूसरा नाम मल्लिषेणप्रशस्ति और निर्दिष्ट शिलालेखोंमें अजितसेन मुनि अथवा अजितसेन पंडितदेव भी पाया जाता है तथा जिनके उक्त प्रशस्तिमें शान्तिनाथ और पद्मनाभ अपरनाम श्रीकान्त और वादिकोलाहल नामके दो शिष्य भी बतलाये गये हैं। इन मल्लिषेणप्रशस्ति और शिलालेखोंका लेखनकाल ई० ११२८, ई० १०९० और ई० ११४७ है और इस लिये इन वादीभसिंहका समय लगभग ई० १०६५ से ई० ११५० तक हो सकता है। बाकीके चार उल्लेख—पहला, दूसरा, चौथा और पाँचवाँ—प्रथम वादीभसिंहके होना चाहिए, जिन्हें 'वादिसिंह' नामसे भी साहित्यमें उल्लेखित किया गया है। वादीभसिंह और वादिसिंहके अर्थमें कोई भेद नहीं है—दोनोंका एक ही अर्थ है। चाहे 'वादीरूपी गजोंके लिये सिंह' यह कहो, चाहे 'वादियोंके लिये सिंह' यह कहो—एक ही बात है।

अब यदि यह निष्कर्ष निकाला जाय कि क्षत्रचूडामणि और गद्यचिन्तामणि इन प्रसिद्ध काव्यग्रंथोंके कर्ता वादीभसिंहसूरि ही स्याद्वादसिद्धिकार हैं और इन्हींने आप्तमीमांसापर विद्यानन्दसे पूर्व कोई टीका अथवा वृत्ति लिखी है जो लघुसमन्तभद्रके उल्लेख परसे जानी जाती है तथा इन्हीं वादीभसिंहका 'वादिसिंह' नामसे जिनसेन और वादिराजने बड़े सम्मानपूर्वक स्मरण किया है। तथा *'स्याद्वादगिरामाश्रित्य वादिसिंहस्य गर्जिते'* वाक्यमें वादिराजने *'स्याद्वादगिर'* पदके द्वारा इन्हींकी प्रस्तुत स्याद्वादसिद्धि जैसी स्याद्वादविद्यासे परिपूर्ण कृतियोंकी ओर इशारा किया है तो कोई अनौचित्य नहीं प्रतीत होता। इसके औचित्यको सिद्ध करनेके लिये नीचे कुछ प्रमाण भी उपस्थित किये जाते हैं।

(१) क्षत्रचूडामणि और गद्यचिन्तामणिके मङ्गलाचरणोंमें कहा गया है कि जिनेन्द्र भगवान् भक्तोंके समीहित (जिनेश्वरपदप्राप्ति)को पुष्ट करें—देवें। यथा-

(क) श्रीपतिर्भगवान्पुष्याद्भक्तानां *वः समीहितम्* ।
यद्भक्तिः शुल्कतामेति मुक्तिकन्याकरग्रहे ॥१॥
—क्षत्रचू० १-१।

१ देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर भाग ६, कि० २, पृ० ७८।
२ देखो, ब्र० शीतलप्रसादजी द्वारा सङ्कलित तथा अनुवादित 'मद्रास व मैसूर प्रान्तके प्राचीन स्मारक' नामक पुस्तक।
३ देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ० ४८०।
४ देखो, न्यायकुमुद प्र० भा० प्रस्ता० पृ० ११२।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ख) श्रियः पतिः पुष्यतु *वः समीहितं*
त्रिलोकरक्षानिरतो जिनेश्वरः ।
यदीयपादाम्बुजभक्तिशीकरः
सुरासुराधीशपदाय जायते ॥
—गद्यचि० पृ० १ ।

यही प्रस्तुत स्याद्वादसिद्धिके मङ्गलाचरणमें कहा गया है—

(ग) नमः श्रीवर्द्धमानाय(?) स्वामिने विश्ववेदिने ।
नित्यानन्द-स्वभावाय *भक्त-सारूप्य-दायिने* ॥१-१॥

(२) जिस प्रकार क्षत्रचूडामणि और गद्यचिन्तामणिके प्रत्येक लम्बके अन्तमें समाप्ति-पुष्पिकावाक्य दिये हैं वैसे ही स्याद्वादसिद्धिके प्रकरणान्तमें वे दिये हैं; यथा—

(क) 'इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ सरस्वतीलम्भो नाम प्रथमो लम्बः।' —क्षत्रचूडा०

(ख) 'इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ सरस्वतीलम्भो नाम प्रथमो लम्बः।'
—गद्यचिन्तामणि ।

(ग) 'इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचितायां स्याद्वादसिद्धौ चार्वाकं प्रति जीवसिद्धि ।'—स्याद्वादसिद्धि ।

(३) जिस तरह क्षत्रचूडामणि और गद्यचिन्तामणिमें यत्र कचित् नीति, तर्क और सिद्धान्तकी पुट उपलब्ध होती है उसी तरह प्रायः स्याद्वादसिद्धिमें वह उपलब्ध होती है । यथा—

(क) *अतर्कितमिदं वृत्तं तर्करूढं हि निश्चलम्* ॥१-४२॥
इत्यूहेन विरक्तोऽभूद्गत्यधीनं हि मानसम् ॥१-६५॥
—क्षत्रचूडामणि ।

(ख) 'ततो हि सुधियः संसारमुपेक्षन्ते ।'
—गद्यचिन्तामणि पृ० ७८ ।

'एवं परगतिविरोधिन्या......... चार्वाकमत*सब्रह्मचारिण्या राज्यश्रिया परिगृहीताः क्षितिपतिसुताः*........ नैयायिक*निर्दिष्टनिर्वाणपदप्रतिष्ठिता इव*........कापिलकल्पित *पुरुषा इव*........*प्रकृतिविकारपरं* वचनं *प्रतिपादयन्ति ।'* —गद्यचि० पृ० ६६ ।

'यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः । स च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकः । अधर्मस्तु तद्विपरीतः ।'
—गद्य० पृ० २४३ ।

(ग) *तदुपायं ततो वक्ष्ये न हि कार्यमहेतुकम्* ॥१-२॥
न ह्यवास्तवतः कार्यं कल्पिताग्नेश्च दाहवत् ॥२-४८॥
न हि स्वान्यार्तिकृत्वं स्याद्विरागे विश्ववेदिनि ॥७-३०७॥
सत्येवात्मनि धर्मे च सौख्योपाये सुखार्थिभिः ।
धर्म एव सदा कार्यो न हि कार्यमकारणे ॥१-२४॥
—स्याद्वाद० ।

इन प्रमाणों एवं तुलनात्मक उद्धारणोंपरसे हम अनुमान कर सकते हैं कि क्षत्रचूडामणि तथा गद्यचिन्तामणिके कर्ता वादीभसिंहसूरि और स्याद्वादसिद्धिके कर्ता वादीभसिंहसूरि दोनों अभिन्न हैं—एक ही विद्वानकी ये तीनों कृतियाँ हैं । इन कृतियोंसे उनकी उत्कृष्ट कवि, उत्कृष्ट वादी और उत्कृष्ट दार्शनिककी ख्याति और प्रसिद्धि हमें यथार्थ जँच जाती है । द्वितीय वादीभसिंहकी भी जो इसी प्रकारकी ख्याति और प्रसिद्धि शिलालेखोंमें पाई जाती है और जिससे विद्वानोंको यह भ्रम हो जाता है कि वे दोनों एक हैं वह मुझे प्रथम वादीभसिंहकी छाया (अनुकृति) जान पड़ती है । इस प्रकारके प्रयत्नके जैन-साहित्यमें अनेक उदाहरण मिलते हैं । तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक आदि महान् दार्शनिक ग्रन्थोंके कर्ता आचाय विद्यानन्दकी जैनसाहित्यमें जो भारी ख्याति और प्रसिद्धि है वैसी ही ख्याति और प्रसिद्धि ईसाकी १६वीं शताब्दीमें हुए एक दूसरे विद्यानन्दिकी हुम्बुच्चके शिलालेखों और वर्द्धमानमुनीन्द्रके दशभक्त्यादिमहाशास्त्र'में वर्णित मिलती है और जिससे विद्वानोंको इन दोनोंके ऐक्यमें भ्रम हुआ है, जिसका निराकरण हमने विद्यानन्दकी 'आप्त-परीक्षा' की विस्तृत प्रस्तावनामें किया है । हो सकता है कि प्रथम नामवाले विद्वान्की तरह उसी नामवाले दूसरे विद्वान् भी प्रभावशाली रहे हों । पर इससे दोनोंका ऐक्य सिद्ध नहीं होता । फिर एक बाधा यह भी है कि ८वीं, ९वीं शताब्दीसे १२वीं शताब्दी तक एक ही विद्वान्का सद्भाव कैसे सम्भव हो सकता है ? अतः विभिन्न कालीन दो वादीभसिंहोंका अस्तित्व मानना ही पड़ेगा । अब नीचे इनके समयपर विचार किया जाता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. स्वामीसमन्तभद्ररचित रत्नकरण्डक और आप्तमीमांसाका क्रमशः क्षत्रचूड़ामणि और स्याद्वाद-सिद्धिपर स्पष्ट प्रभाव है। यथा—

श्वाऽपि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्म-किल्विषात्
—रत्नकरण्ड० श्लोक २९।

देवता भविता श्वापि देवः श्वा धर्म-पापतः।
—क्षत्रचूडामणि ११–७७।

कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्॥ आप्त. ८।
कुशलाकुलत्वं च न चेत्ते दातृहिंस्रयोः॥
—स्या० ३–११८।

अतः वादीभसिंहसूरि स्वामी समन्तभद्रके पश्चाद्वर्ती अर्थात् ईसाकी दूसरी-तीसरी शताब्दीके बादके विद्वान् हैं।

२. अकलङ्कदेवके न्यायविनिश्चयादि ग्रन्थोंका भी स्याद्वादसिद्धिपर असर है, जिसका एक नमूना इस प्रकार है—

अप्रमत्ता विवक्षेयं अन्यथा नियमात्ययात्।
इष्टं सत्यं हितं वक्तुमिच्छा दोषवती कथम्॥
—न्यायवि० का० ३५६।

सार्वज्ञसहजेच्छा तु विरागेऽप्यस्ति, सा हि न।
रागाद्यपहता तस्माद्भवेद्वक्तैव सर्ववित्॥
—स्या० ८–३१७।

अतः वादीभसिंह अकलङ्कदेवके अर्थात् ईसाकी सातवीं शताब्दीके उत्तरवर्ती विद्वान् हैं।

३. प्रस्तुत स्याद्वादसिद्धिके छठे प्रकरणकी २८२वीं कारिकामें भट्ट और प्रभाकरका नामोल्लेख करके उनके अभिमत भावना-नियोगरूप वेदवाक्यार्थका दिर्देश किया गया है। इसके अलावा कुमारिलभट्टके मीमांसाश्लोकवार्तिकसे कई कारिकाएँ भी उद्धृत करके उनकी आलोचना की गई है। कुमारिलभट्ट और प्रभाकर समकालीन विद्वान् हैं तथा ईसाकी सातवीं शताब्दी उनका समय माना जाता है। अतः वादीभसिंह इनके उत्तरवर्ती हैं।

४. बौद्धविद्वान् शङ्करानन्दकी अपोहसिद्धि और प्रतिबन्धसिद्धिकी आलोचना स्याद्वादसिद्धिके तीसरे-चौथे प्रकरणोंमें की गई मालूम होती है। शङ्करानन्द-का समय राहुल सांकृत्यायनने ई० ८०० निर्धारित किया है[१]। शङ्करानन्दके उत्तरकालीन अन्य विद्वान् की आलोचना अथवा विचार स्याद्वादसिद्धिमें नहीं पाया जाता। अतः वादीभसिंहके समयकी पूर्वावधि शङ्करानन्दका समय जानना चाहिए। अर्थात् ईसाकी ८वीं शती इनकी पूर्वावधि माननेमें कोई बाधा नहीं है।

अब उत्तरावधिके साधक प्रमाण दिये जाते हैं—

१. तामिल-साहित्यके विद्वान् पं० स्वामिनाथय्या और श्रीकुप्पूस्वामी शास्त्रीने अनेक प्रमाणपूर्वक यह सिद्ध किया है कि तामिलभाषामें रचित तिरुत्तक्कदेव कृत 'जीवकचिन्तामणि' ग्रन्थ क्षत्रचूडामणि और गद्यचिन्तामणिकी छाया लेकर रचा गया है और जीवकचिन्तामणिका उल्लेख सर्वप्रथम तामिलभाषाके 'पेरियपुराण'में मिलता है जिसे चोल-नरेश कुलोत्तुङ्गके अनुरोधसे शेक्किलार नामक विद्वान्ने रचा माना जाता है। कुलोत्तुङ्गका राज्य-काल वि० सं० ११३७से ११७५ (ई० १०८०से ई० १११८) तक है[२]। अतः वादीभसिंह इससे पूर्ववर्ती हैं—बादके नहीं।

२. श्रावकके आठ मूलगुणोंके बारेमें जिनसेनाचार्यके पूर्व एक ही परम्परा थी और वह थी स्वामी समन्तभद्रकृत रत्नकरण्डकश्रावकाचार प्रतिपादित। जिसमें तीन मकार (मद्य, मांस और मधु) तथा हिंसादि पाँच पापोंका त्याग विहित है। जिनसेनाचार्यने उक्त परम्परामें कुछ परिवर्तन किया और मधुके स्थानमें जुआको रखकर मद्य, मांस, जुआ तथा पाँच पापोंके परित्यागको अष्ट मूलगुण बतलाया। उसके बाद सोमदेवने तीन मकार और पाँच उदुम्बर फलोंके त्यागको अष्ट मूलगुण कहा, जिसका अनुसरण पं० आशाधरजी आदि विद्वानोंने किया है। परन्तु वादीभसिंहने क्षत्रचूडामणिमें[३] स्वामी समन्तभद्र प्रतिपादित पहली परम्पराको ही स्थान दिया है और और जिनसेन आदिकी परम्पराओंको स्थान नहीं

१ देखो, 'वादन्याय'का परिशिष्ट A।
२ देखो, जैनसाहित्य और इतिहास।
३ अहिंसा सत्यमस्तेयं स्वस्त्री-मितवसु-ग्रहौ।
मद्यमांसमधुत्यागैस्तेषां मूलगुणाष्टकम्॥क्षत्र० ७-२३।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

दिया। यदि वादीभसिंह जिनसेन और सोमदेवके उत्तरकालीन होते तो वे, बहुत सम्भव था कि उनकी परम्पराको देते अथवा साथमें उन्हें भी देते। जैसा कि पं० आशाधरजी आदि विद्वानोंने किया है। इसके अलावा वादीभसिंहने गुणव्रतों और शिक्षाव्रतोंके सम्बन्धमें भी स्वामी समन्तभद्राचार्यकी रत्नकरण्डक-श्रावकाचार वर्णित परम्पराको ही अपनाया है। इन बातोंसे प्रतीत होता है कि वादीभसिंह, जिनसेन और सोमदेव, जिनका समय क्रमशः ईसाकी नवमी और दशमी शताब्दी है, पश्चाद्वर्ती नहीं हैं—पूर्ववर्ती हैं।

३. न्यायमञ्जरीकार जयन्तभट्टने कुमारिलकी मीमांसाश्लोकवार्तिकगत *'वेदस्याध्ययनं सर्वं'* इस, वेदकी अपौरुषेयताको सिद्ध करनेके लिये उपस्थित की गई, अनुमान-कारिकाका न्यायमञ्जरीमें सम्भवतः सर्व प्रथम 'भारताध्यनं सर्वं' इस रूपसे खण्डन किया है, जिसका अनुसरण उत्तरवर्ती प्रभाचन्द्र[१], अभयदेव[२], देवसूरि[३], प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्य[४] प्रभृति तार्किकोंने किया है। न्यायमञ्जरीकारका वह खण्डन इस प्रकार है—

'भारतेऽप्येवमभिधातुं शक्यत्वात्',

भारताध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकं ।

भारताध्ययनवाच्यत्वादिदानीन्तनभारताध्ययनवदिति ॥

—न्यायमं० पृ० २१४।

परन्तु वादीभसिंहने स्याद्वादसिद्धिमें कुमारिलको उक्त कारिकाके खण्डनके लिये अन्य विद्वानोंकी तरह न्यायमञ्जरीकारका अनुगमन नहीं किया। अपितु स्वरचित एक भिन्न कारिकाद्वारा उसका निरसन किया है जो निम्न प्रकार है:—

पिटकाध्ययनं सर्वं तदध्ययनपूर्वकम् ।

तदध्ययनवाच्यत्वादधुनेव भवेदिति ॥

—स्या. १०-३८२।

इसके अतिरिक्त वादीभसिंहने कोई पाँच जगह और भी इसी स्याद्वादसिद्धिमें 'पिटक'का ही उल्लेख किया है; जो प्राचीन परम्पराका द्योतक है[१]—भारतका एक भी जगह उल्लेख नहीं किया। इससे हम इस नतीजेपर पहुंचते हैं कि यदि वादीभसिंह न्यायमञ्जरीकार जयन्तभट्टके उत्तरवर्ती होते तो वे उनका अन्य उत्तरकालीन विद्वानोंकी तरह जरूर अनुसरण करते—'भारताध्ययनं सर्वं' इत्यादिको अपनाते। और उस हालतमें *'पिटकाध्ययनं सर्वं'* इस नई कारिकाको जन्म न देते। इससे ज्ञात होता है कि वादीभसिंह न्यायमञ्जरीकारके उत्तरवर्ती विद्वान् नहीं हैं। न्यायमञ्जरीकारका समय ई० ८४० माना जाता है[२]। अतः वादीभसिंह इससे पहलेके हैं।

४. आ० विद्यानन्दने आप्तपरीक्षामें जगत्कर्तृत्वका खण्डन करते हुए ईश्वरको शरीरी अथवा अशरीरी माननेमें दूषण दिये हैं और विस्तृत मीमांसा की है। उसका कुछ अंश टीका सहित नीचे दिया जाता है—

'महेश्वरस्याशरीरस्य स्वदेहनिर्माणानुपपत्तेः। तथा हि—

देहान्तराद्विना तावत्स्वदेहं जनयेद्यदि ।
तदा प्रकृतकार्येऽपि देहाधानमनर्थकम् ॥१८॥
देहान्तरात्स्वदेहस्य विधाने चानवस्थितिः ।
तथा च प्रकृतं कार्यं कुर्यादीशो न जातुचित् ॥१९॥

यथैव हि प्रकृतकार्यजननायापूर्वं शरीरमीश्वरो निष्पादयति तथैव तच्छरीरनिष्पादनायापूर्वं शरीरान्तरं निष्पादयेदिति कथमनवस्था विनिवार्येत ?

यथाऽनीशः स्वदेहस्य कर्ता देहान्तरान्मतः ।
पूर्वस्मादित्यनादित्वान्नानवस्था प्रसज्यते ॥२१॥
तथेशस्यापि पूर्वस्माद्देहाद्देहान्तरोद्भवात् ।
नानवस्थेति यो ब्रूयात्तस्याऽनीशत्वमीशितुः ॥२२॥
अनीशः कर्मदेहेनाऽनादिसन्तानवर्तिना ।
यथैव हि सकर्माणस्तद्वन्न कथमीश्वरः ॥२३॥

यही कथन वादीभसिंहने स्याद्वादसिद्धिमें सिर्फ ढाई कारिकाओंमें किया है और जिसका पल्लवन एवं

१ देखो, न्यायकुमुद पृ. ७३१, प्रमेयक. पृ. ३६६।
२ देखो, सन्मति टी. पृ. ४१। ३ देखो, स्या. र. पृ. ६३४।
४ देखो, प्रमेयरत्न. पृ. १३७।

१ अष्टशती और अष्टसहस्री (पृ. २३७) में अकलङ्कदेव तथा उनके अनुगामी विद्यानन्दने भी इसी (पिटकत्रय) का उल्लेख किया है।
२ देखो, न्यायकु. द्वि भा. प्र. पृ. १६।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विस्तार ही उपर्युक्त जान पड़ता है। वे ढाई कारिकाएँ ये हैं:—

देहारम्भोऽप्यदेहस्य वक्तृत्ववदयुक्तिमान् ।
देहान्तरेण देहस्य यद्यारम्भोऽनवस्थितिः ॥
अनादिस्तत्र बन्धश्च स्यक्तोपात्तशरीरता ।
अस्मदादिवदेवाऽस्य जातु नैवाऽशरीरता ॥
देहस्यानादिता न स्यादेतस्यां च प्रमात्ययात् ॥

—६-२७३, २७४½।

इन दोनों उद्धरणोंका सूक्ष्म समीक्षण करनेपर कोई भी सूक्ष्म-समीक्षक यह कहे बिना न रहेगा कि वादीभसिंहका कथन जहाँ मौलिक और संक्षिप्त है वहाँ विद्यानन्दका कथन विस्तारयुक्त है और जिसे वादीभसिंहके कथनका खुलासा कहना चाहिए। अतः विद्यानन्दका समय वादीभसिंहकी उत्तरावधि है। यदि ये दोनों विद्वान् समकालीन भी हों जैसा कि सम्भव है तो भी एक दूसरेका प्रभाव एक दूसरेपर पड़ सकता है और एक दूसरेके कथन एवं उल्लेखका आदर एक दूसरा कर सकता है। विद्यानन्दका समय हमने अन्यत्र ई० ७७५से ई० ८४० निर्द्धारित किया है। अतः इन प्रमाणोंसे वादीभसिंहसूरिका समय ईसाकी ८वीं और ९वीं शताब्दीका मध्यकाल (ई० ७७० से ई० ८६०) अनुमानित होता है।

बाधकोंका निराकरण

इस समयके स्वीकार करनेमें दो बाधक प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं और वे ये हैं—

१. क्षत्रचूडामणि और गद्यचिन्तामणिमें जीवन्धरस्वामीका चरित निबद्ध है जो गुणभद्राचार्यके उत्तरपुराण[1] (शक सं० ७७०, ई० ८४८) गत जीवन्धरचरितसे लिया गया है। इसका संकेत भी गद्यचिन्तामणिके निम्न पद्यमें मिलता है—

निःसारभूतमपि बन्धनतन्तुजातं,
मूर्ध्ना जनो वहति हि प्रसवानुषङ्गात् ।
जीवन्धरप्रभवपुण्यपुराणयोगा-
-द्वाक्यं ममाऽप्युभयलोकहितप्रदायि ॥९॥

अतएव वादीभसिंह गुणभद्राचार्यसे पीछेके हैं।

२. सुप्रसिद्ध धारानरेश भोजकी झूठी मृत्युके शोकपर उनके समकालीन सभाकवि कालिदास, जिन्हें परिमल अथवा दूसरे कालिदास कहा जाता है, द्वारा कहा गया निम्न श्लोक प्रसिद्ध है—

अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती ।
पण्डिता खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवंगते ॥

और इसी श्लोकके पूर्वार्धकी छाया सत्यन्धर महाराजके शोकके प्रसङ्गमें कही गई गद्यचिन्तामणिकी निम्न गद्यमें पाई जाती है—

'अद्य निराधारा धरा निरालम्बा सरस्वती ।'

अतः वादीभसिंह राजा भोज (वि० सं० १०७६से वि० ११९२)के बादके विद्वान् हैं।

ये दो बाधक प्रमाण हैं जिनमें पहलेके उद्भावक पं० नाथूरामजी प्रेमी हैं और दूसरेके स्थापक श्रीकुप्पुस्वामी शास्त्री तथा समर्थक प्रेमीजी हैं। इनका समाधान इस प्रकार है—

१. कवि परमेष्ठी अथवा परमेश्वरने जिनसेन और गुणभद्रके पहले 'वागर्थसंग्रह' नामका जगत्प्रसिद्ध पुराण रचा है[1] और जिसमें त्रेशठशलाका पुरुषोंका चरित वर्णित है तथा जिसे उत्तरवर्ती अनेकों पुराणकारोंने अपने पुराणोंका आधार बनाया है। खुद जिनसेन और गुणभद्रने भी अपने आदिपुराण तथा उत्तरपुराण उसीके आधारसे बनाये हैं—इनका मूलस्रोत कवि परमेष्ठी अथवा परमेश्वरका 'वागर्थसंग्रह' पुराण है, यह प्रेमीजी स्वयं स्वीकार करते हैं[2]। तब वादीभसिंहने भी जीवन्धरचरित जो उक्त प्रमाणमें निबद्ध होगा, उसी (पुराण)से लिया है, यह कहनेमें कोई बाधा नहीं जान पड़ती। गद्यचिन्ता-

१ प्रेमीजीने जो इसे 'शक सं. ७०५ (वि. सं. ८४०) की रचना' बतलाई है (देखो, जैनसा. और इति. पृ. ४८१) वह प्रेसादिकी गलती जान पड़ती है; क्योंकि उन्होंने उसे अन्यत्र शक सं. ७७०, ई. ८४८के लगभगकी रचना सिद्ध की है, देखो, वही पृ. ५१४।

१ देखो, डा. ए. एन. उपाध्येका 'कवि परमेश्वर या परमेष्ठी' शीर्षक लेख, जैन सि. भा. भाग १३, कि. २।

२ देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ. ४२१।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणिकारने यह कहीं नहीं लिखा कि उन्होंने गुणभद्रके उत्तरपुराणसे अपने ग्रन्थोंमें जीवन्धरचरित निबद्ध किया है। गद्यचिन्तामणिका जो पद्य प्रस्तुत किया गया है उसमें सिर्फ इतना ही कहा है कि 'इसमें जीवन्धरस्वामीके चरितके उद्भावक पुण्यपुराणका सम्बन्ध होने अथवा मोक्षगामी जीवन्धरके पुण्य-चरितका कथन होनेसे यह (मेरा गद्यचिन्तामणिरूप वाक्य-समूह) भी उभय लोकके लिये हितकारी है।' और वह पुण्यपुराण उपर्युक्त 'वागर्थसंग्रह' भी हो सकता है। वह गुणभद्रका उत्तरपुराण है, यह उससे सिद्ध नहीं होता। इसके सिवाय, गद्यचिन्तामणिकारने वस्तुतः उस जीवन्धरचरितको गद्यचिन्तामणिमें कहने की प्रतिज्ञा की है जिसे गणधरने कहा और अनेक सूरियों (आचार्यों) द्वारा—न कि केवल गुणभद्रद्वारा—जगतमें ग्रन्थरचनादिके रूपमें प्रख्यापित हुआ है। यथा—

इत्येवं गणनायकेन कथितं पुण्यास्रवं शृण्वतां
तज्जीवन्धरवृत्तमत्र जगति प्रख्यापितं सूरिभिः ।
विद्यास्फूर्तिविधायि धर्मजननीवाणीगुणाभ्यर्थिनां
वक्ष्ये गद्यमयेन वाङ्मयसुधावर्षेण वाक्सिद्धये ॥१५॥

अतः वादीभसिंहको गुणभद्राचार्यका उत्तरवर्ती सिद्ध करनेके लिये जो उक्त हेतु दिया जाता है वह युक्तियुक्त न होनेसे वादीभसिंहके उपरोक्त समयका बाधक नहीं है।

२. दूसरी बाधाको उपस्थित करते हुए उसके उपस्थापक श्रीकुप्पुस्वामी शास्त्री और उनके समर्थक प्रेमीजी दोनों विद्वानोंको एक भ्रान्ति हुई है, जिसका अनुसरण अन्य विद्वानों द्वारा आज भी होता जारहा है और इस लिये उसका परिमार्जन होजाना चाहिए। वह भ्रान्ति यह है कि गद्यचिन्तामणिकी उक्त जिस गद्यको सत्यन्धर महाराजके शोकके प्रसङ्गमें कही गई बतलाई है वह उनके शोकके प्रसङ्गमें नहीं कही गई। अपितु काष्ठाङ्गारके हाथीको जीवन्धरस्वामीने कड़ा मारा था, उससे क्रुद्ध हुए काष्ठाङ्गारके निकट जब जीवन्धरस्वामीको गन्धोत्कटने बाँधकर भेज दिया और काष्ठाङ्गारने उन्हें वधस्थानमें लेजाकर फाँसी देनेकी सजाका हुकुम दे दिया तो सारा नगरमें सन्नाटा छा गया और समस्त नगरवासी सन्तापमें मग्न होगये तथा शोक करने लगे। इसी समयकी उक्त गद्य है और जो पाँचवें लम्बमें पाई जाती है जहाँ सत्यन्धर-का कोई सम्बन्ध नहीं है—उनका तो पहले लम्ब तक ही सम्बन्ध है। वह पूरी प्रकृतोपयोगी गद्य इस प्रकार है—

'*अद्य निराश्रया श्रीः, निराधारा धरा, निरालम्बा सरस्वती, निष्फलं लोकलोचनविधानम्, निःसारः संसारः, नीरसा रसिकता, निरास्पदा वीरता इति मिथः प्रवर्तयति प्रणयोद्गारिणीं वाणीम्*........' —पृ० १३१।

इस गद्यके पद-वाक्योंके विन्यासको देखते हुए यही प्रतीत होता है कि यह गद्य मौलिक है और वादीभसिंहकी अपनी रचना है। हो सकता है कि उक्त परिमल कविने इसी गद्यके पदोंको अपने उक्त श्लोकमें समाविष्ट किया है। यदि उल्लिखित पद्यकी इसमें छाया होती तो 'अद्य' और 'निराधारा धरा' के बीचमें 'निराश्रया श्रीः' यह पद न आता। छायामें मूल ही तो आता है। यही कारण है कि इस पदको शास्त्रीजी और प्रेमीजी दोनों विद्वानोंने पूर्वोल्लिखित गद्यमें उद्धृत नहीं किया—उसे अलग करके और 'अद्य' को 'निराधारा धरा' के साथ जोड़कर उपस्थित किया है! अतः यह दूसरी बाधा भी निर्बल एवं अपने विषयकी असाधक है।

पुष्पसेन और ओडयदेव

वादीभसिंहके साथ पुष्पसेनमुनि और ओडयदेव-का सम्बन्ध बतलाया जाता है। पुष्पसेनको उनका गुरु और ओडयदेव उनका जन्म-नाम अथवा वास्तव-नाम कहा जाता है। इसमें निम्न पद्य प्रमाणरूपमें दिये जाते हैं—

पुष्पसेनमुनिनाथ इति प्रतीतो,
दिव्यो मनुर्हृदि सदा मम संनिदध्यात् ।
यच्छक्तितः प्रकृतमूढमतिर्जनोऽपि,
वादीभसिंहमुनिपुङ्गवतामुपैति ॥

* * *

श्रीमद्वादीभसिंहेन गद्यचिन्तामणिः कृतः ।
स्थेयादोडयदेवेन चिरायास्थानभूषणः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थेयादोडयदेवेन वादीभहरिणा कृतः ।
गद्यचिन्तामणिर्लोके चिन्तामणिरिवापरः ॥

इनमें पहला पद्य गद्यचिन्तामणिकी प्रारम्भिक पीठिकाका छठा पद्य है और जो स्वयं ग्रन्थकारका रचा हुआ है। इस पद्यमें कहा गया है कि 'वे प्रसिद्ध पुष्पसेन मुनीन्द्र दिव्य मनु—पूज्य गुरु—मेरे हृदयमें सदा आसन जमायें रहें—वर्तमान रहें जिनके प्रभावसे मुझ जैसा निपट मूर्ख साधारण आदमी भी 'वादीभ-सिंह-मुनिश्रेष्ठ' अथवा वादीभसिंहसूरि बन गया।' अतः यह तो सर्वथा असंदिग्ध है कि वादीभसिंहसूरिके गुरु पुष्पसेन मुनि थे—उन्होंने उन्हें मूर्खसे विद्वान् और साधारणजनसे मुनिश्रेष्ठ बनाया था और इस लिये वे वादीभसिंहके दीक्षा और विद्या दोनोंके गुरु थे[1]।

अन्तिम दोनों पद्य, जिनमें ओडयदेवका उल्लेख है, मुझे वादीभसिंहके स्वयंके रचे नहीं मौलूम होते; क्योंकि प्रथम तो जिस प्रशस्तिके रूपमें वे पाये जाते हैं वह प्रशस्ति गद्यचिन्तामणिकी सभी प्रतियोंमें उपलब्ध नहीं है—सिर्फ तञ्जोरकी दो प्रतियोंमेंसे एक ही प्रतिमें वे मिलते हैं। इसी लिये मुद्रित गद्यचिन्तामणिके अन्तमें वे अलगसे दिये गये हैं और श्रीकुप्पूस्वामी शास्त्रीने फुटनोटमें उक्त प्रकारकी सूचना की है। दूसरे, प्रथम श्लोकका पहला पाद और दूसरे श्लोकका दूसरा पाद, पहले श्लोकका दूसरा पाद और दूसरे श्लोकका तीसरा पाद, तथा पहले श्लोकका तीसरा पाद और दूसरे श्लोकका पहला पाद परस्पर अभिन्न हैं—पुनरुक्त हैं—उनसे कोई विशेषता जाहिर नहीं होती और इस लिये ये दोनों शिथिल पद्य वादीभसिंह जैसे उत्कृष्ट कविकी रचना ज्ञात नहीं होते। तीसरे, वादीभसिंहसूरिकी प्रशस्ति देनेकी प्रकृति और परिणति भी प्रतीत नहीं होती। उनकी क्षत्रचूडामणिमें भी वह नहीं है और स्याद्वादसिद्धि अपूर्ण है, जिससे उसके बारेमें कुछ कहा नहीं जा सकता। अतः उपर्युक्त दोनों पद्य हमें अन्यद्वारा रचित प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं और इस लिये ओडयदेव वादीभसिंहका जन्म-नाम अथवा वास्तव नाम था, यह बिना निर्बाध प्रमाणोंके नहीं कहा जा सकता। हाँ, वादीभसिंहका जन्मनाम व असली नाम कोई रहा जरूर होगा। पर वह क्या होगा, इसके साधनका कोई दूसरा पुष्ट प्रमाण ढूँढना चाहिए।

[1] पं० के० भुजबलीजी शास्त्रीने जो यह लिखा है कि 'पुष्पसेन वादीभसिंहके विद्यागुरु नहीं थे; किन्तु दीक्षागुरु। अन्यथा इनकी कोई कृति मिलती और साहित्य-संसारमें इनकी भी ख्याति होती। मगर साहित्य-संसारमें ही नहीं यों भी वादीभसिंहकी जितनी ख्याति हुई है, उतनी इनके गुरु पुष्पसेनकी नहीं हुई अनुमित होती है।' (भा. भा. ६, किरण २, पृ. ८४)। वह ठीक नहीं जान पड़ता; क्योंकि वैसी व्याप्ति नहीं है। रविभद्र-शिष्य अनन्तवीर्य, वर्द्धमान-मुनि-शिष्य अभिनव धर्मभूषण और मतिसागर-शिष्य वादिराजकी साहित्य-संसारमें कृतियाँ तथा ख्याति दोनों उपलब्ध हैं पर उनके इन गुरुओंकी न कोई साहित्य-संसारमें कृतियाँ उपलब्ध हैं और न ख्याति। वर्तमानमें भी ऐसा देखा जाता है जिसके अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

उपसंहार

संक्षेपतः 'स्याद्वादसिद्धि' जैनदर्शनकी एक प्रौढ और अपूर्व अभिनव रचना है। जिन कुछ कृतियोंसे जैनदर्शनका वाङ्मयाकाश देदीप्यमान है और मस्तक उन्नत है उन्हींमें यह कृति भी परिगणनीय है। यह अभीतक अप्रकाशित है और इसी लिये अनेक विद्वान् इससे अपरिचित हैं।

हम उस दिनकी प्रतीक्षामें हैं जब वादीभसिंहकी यह अमर कृति प्रकाशित होकर विद्वानोंमें अद्वितीय आदरको प्राप्त करेगी और जैनदर्शनकी गौरवमय प्रतिष्ठाको बढ़ावेगी। क्या कोई महान साहित्य-प्रेमी इसे प्रकाशित कर महत् श्रेयका भागी बनेगा और ग्रन्थ-ग्रन्थकारकी तरह अपनी उज्ज्वल कीर्तिको अमर बना जायेगा ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पं० शिवचन्द्र देहलीवाले

देहलीमें पं. शिवचन्द्र नामके एक अच्छे साहित्य-प्रेमी विद्वान् होगये हैं जिन्होंने पञ्चायती मन्दिरके भण्डारमें ग्रन्थोंका बहुत अच्छा संग्रह किया है और स्वयं भी हिन्दी-साहित्यका कितना ही निर्माण किया है। इनका उल्लेख श्रद्धेय पंडित नाथूरामजी प्रेमीने अपनी 'हिन्दी जैनसाहित्यका इतिहास' नामक पुस्तकमें किया है। उक्त भण्डारकी सूचीका निरीक्षण करते हुए हमें उनके निम्न ग्रन्थोंका पता चला है। इनमें कौन अनुवादित और कौन स्वनिर्मित हैं, इसका निर्णय विज्ञ पाठक ही इन ग्रन्थोंका पूर्णतः अवलोकन-कर कर सकेंगे। यहाँ तो सिर्फ उनकी सूची दी जारही है। आशा है कोई विद्वान् इनपर पूरा प्रकाश डालेंगे।

(१) भक्तामरस्तोत्र भाषा
(२) कल्याणमन्दिरस्तोत्र ,,
(३) एकीभावस्तोत्र ,, ५७ पत्र
(४) विषापहारस्तोत्र ,,
(५) भूपालचौबीसी ,,
(६) स्वयम्भूस्तोत्र ,, १० पत्र
(७) जिनसहस्रनाम ,, ३ पत्र
(८) तत्वार्थटीका १६ पत्र
(९) सर्वार्थसिद्धिटीका ९५ पत्र
(१०) नीतिवाक्यामृतटीका ९८ पत्र
(११) दशलक्षणधर्मटीका १७ पत्र
(१२) सोलहकारणधर्मटीका १९ पत्र
(१३) त्रिवर्णाचार-टीका २७४ पत्र
(१४) धर्मप्रश्नोत्तरश्रावकाचारटीका १३६ पत्र
(१५) देवशास्त्रगुरुपूजासार्थ (सं० १९६०) ६ पत्र
(१६) बीसमहाराज ,, ,, १० पत्र
(१७) सिद्धपूजा ,, ,, ४ पत्र
(१८) सोलहकारण ,, ,, ४ पत्र
(१९) दशलक्षणपूजा ४ पत्र
(२०) कलिकुण्डपूजा
(२१) पञ्चमेरुपूजा ५ पत्र
(२२) सप्तऋषिपूजा
(२३) इतिहासरत्नाकर २ भाग पूर्ण (सं.१९२०) ५५ पत्र
(२४) ,, तीसरा अपूर्ण ,,
(२५) ,, चौथा भाग ,, १०१ पत्र
(२६) लोकचर्चावचनिका ५६ पत्र
(२७) दायभागप्रकरण १९ पत्र
(२८) भक्तिपाठसप्तक स.टि. (सं. १९४८) ४६ पत्र
(२९) नीतिवाक्यामृतवचनिका
षट्द्रव्यकथनादिधार्मिकचर्चा
(३०) ध्यानकी विधि १४ पत्र
(३१) जैनउद्योतपत्रिका (सं० १९२७)
(३२) अलौकिकगणित
(३३) शिक्षाचन्द्रिका
(३४) अन्यमतके ग्रन्थोंमें जैनधर्म सम्बन्धी श्लो. ४ पत्र
(३५) प्रश्नोत्तर ११ पत्र
(३६) षट्मतव्यवस्थावर्णन ७ पत्र
(३७) मतखण्डनविवाद ८ पत्र
(३८) गृहस्थचर्या
(३९) जैनमतप्रबोधिनी ७१ पत्र
(४०) गुणस्थानचर्चा ४ पत्र
(४१) विवाहपद्धति ९ पत्र
(४२) सत्यार्थप्रकाशकी समालोचना ३७ पत्र
(४३) पंचेन्द्रियविषयवर्णन ३ पत्र
(४४) आर्यसमाजियोंसे प्रश्न १३ पत्र
(४५) अनादि दिगम्बर ६ पत्र
(४६) जैनसभाव्याख्यान ८ पत्र
(४७) आरापैंतीसी (निर्माण सं० १९२०) २५ पत्र
(४८) चैत्यवन्दना
(४९) शास्त्रपूजा सार्थ
(५०) गुरुपूजा सार्थ
(५१) यात्राप्रबन्ध (सं० १९२७) १४ पत्र
(५२) अष्टाह्निकापूजा

—पन्नालाल जैन अग्रवाल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्मका रहस्य

(लेखक—पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री)

धर्मकी चर्चा करना जितना सरल है उसके रहस्य (सत्यरूप) को हृदयङ्गम करना उतना ही कठिन है। यों तो अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाणको सबने धर्म माना है। पर क्या इतने मात्रसे हम धर्मका निर्णय कर सकते हैं? यह एक सामान्य प्रश्न है जो प्रत्येक विचारशीलके हृदयमें उठा करता है। और जबकि इन सब बातोंके रहते हुए भी इनके माननेवाले परस्परमें घात-प्रत्याघात करते हैं, बात-बातमें झूठ बोलते हैं, नफा-नुकसानको न्यूनाधिक बताकर चोरी करते हैं, अब्रह्मके सहायक साधनोंके जुटानेमें लगे रहते हैं और जितना अधिक परिग्रह जुड़ता जाता है उतना ही अपना बड़प्पन समझते हैं तब उसका हृदय सन्तापसे जलने लगता है और वह क्रमशः धर्मकी निःसारताको जीवनमें अनुभव करने लगता है। वह यह मानने लगता है कि ईश्वरवादके समान यह भी एक वाद है जो व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका शत्रु है और सब अनर्थोंकी जड है। परन्तु विचार करनेपर ज्ञात होता है कि यह सब धर्मका दोष नहीं है। किन्तु जिस अधर्मका त्याग करनेके लिये धर्मकी उत्पत्ति हुई है यह उसीका दोष है। इस लिये मानवमात्रका कर्तव्य है कि वह धर्मका अनुसन्धान कर उसके सत्यरूपको समझनेका प्रयत्न करे।

धर्म शब्द 'धृ' धातुमें 'मप्' प्रत्यय जोड़नेसे बनता है जिसका अर्थ धारण करनेवाला होता है। इसके अनुसार धर्म जीवनकी वह परिणति है जिसके धारण करनेसे प्रत्येक प्राणी अपनी उन्नति करनेमें सफल होता है।

धर्म सब पदार्थोंमें व्याप रहा है। वह व्यापक सत्य है। जिसका जो स्वभाव है वही उसका धर्म है। जीवका स्वभाव ज्ञान, दर्शन है। वह रूप, रस, गन्ध और स्पर्शसे रहित है। राग, द्वेष, ईर्षा, मद, मात्सर्य, अज्ञान, अदर्शन आदि दोष भी उसमें नहीं हैं। घर, स्त्री, सन्तान, कुटुम्ब, धन, दौलत, शरीर, वचन, मन, इन्द्रियाँ, स्वदेश, विदेश, स्वराज्य, परराज्य आदि तो उसके हो ही कैसे सकते हैं। वह इनमें ममकार तथा अहङ्कार भी नहीं करता है। वह वर्णभेद तथा जातिभेदसे भी परे है। छूत, अछूतका भी भेद उसमें नहीं है। वह न किसीका आदर ही करता है और न अनादर ही। स्वयं भी वह किसीसे पूजा-सत्कार नहीं चाहता। इच्छा और वासना तो उसे छू तक नहीं गई हैं। उसे न भूख लगती है और न प्यास ही। जन्म, जरा, मरण, आधि-व्याधि, आदि भी उसके नहीं होते। वह न तो शस्त्रसे काटा ही जा सकता है और न अग्निसे जलाया ही जा सकता है। वह किसी अन्य वस्तुका कर्ता भोक्ता भी नहीं है। यदि कर्ता भोक्ता है भी तो प्रति समय होनेवाले अपने परिणामोंका ही कर्ता भोक्ता है। विश्व अनादि और अविनश्वर है। उसका बनानेवाला भी वह नहीं है। ऐसा सर्व शक्तिमान् ईश्वर भी नहीं है जिसने इसे बनाया हो। यह हमारा बुद्धि-दोष है जिससे हम सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी कल्पना कर उसे विश्वका कर्ता मानते हैं। यद्यपि जीव ऐसा है किंतु अनादि कालसे मोह और अज्ञानवश वह अपने इस स्वभावसे च्युत हो रहा है। जैसे भोजनमें नमक मिला देनेपर उसका रस बदल जाता है या जैसे वर्षाका शुद्ध जल पात्रोंके भेदसे अनेक रसवाला हो जाता है वैसे ही जीवके साथ कर्मका बन्धन होनेसे उसमें अनेक विकारी भाव पैदा होगये हैं। जिसके धारण करनेसे जीवके ये विकारी भाव दूर होते हैं उसीका नाम धर्म है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

धर्मका विचार मुख्यतः दो दृष्टियोंसे किया जाता है। पहली आध्यात्मिक दृष्टि है और दूसरी व्याव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हारिक। जिसमें आत्माकी विविध अवस्थाओंका कर्ता स्वयं आत्माको बतलाकर अपनी शुद्ध अवस्थाकी प्राप्तिके लिये आत्म-पुरुषार्थको जागृत किया जाता है वह अध्यात्म-दृष्टि है और जिसमें अशुद्धताका कारण निमित्तको बतलाकर उसके त्यागका उपदेश दिया जाता है वह व्यावहारिक दृष्टि है। इस हिसाबसे धर्म दो भागोंमें बँट जाता है—अध्यात्म धर्म और व्यवहार धर्म। अध्यात्म धर्मका दूसरा नाम निश्चय धर्म है और व्यवहार धर्मका दूसरा नाम उपचार धर्म है।

पुराणोंमें एक कथा आई है। उसमें बतलाया है कि श्रमण भगवान महावीरके समयमें वारिषेण और पुष्पडाल नामक दो मित्र थे। वारिषेण राजपुत्र था और पुष्पडाल वैश्यपुत्र। एक समय वारिषेण श्रमण भगवान महावीरका उपदेश सुनकर साधु हो गया। जब यह बात पुष्पडालको ज्ञात हुई तो मित्रस्नेहवश वह भी दीक्षित होगया। पुष्पडाल साधुधर्ममें तो दीक्षित होगया किन्तु वह अपनी एकमात्र कानी स्त्रीको न भुला सका।

जब वारिषेणने इस बातको जाना तो वह विचार-में पड़ गया और गृहस्थ अवस्थाकी अपनी बत्तीस स्त्रियोंको दिखाकर उसका मोह दूर किया।

यद्यपि इस कथानकमें पुष्पडालके सच्चे साधु न बन सकनेका कारण व्यवहारसे उसकी एकमात्र कानी स्त्रीको बतलाया गया है किन्तु आध्यात्मिक पहलू इससे भिन्न है। इस दृष्टिसे तो साधु बननेमें बाधक ममताको ही माना जा सकता है। स्त्रियाँ दोनोंके थीं फिर भी एक साधु बन जाता है और दूसरा नहीं बन पाता है, इसका मुख्य कारण उनकी आन्तरिक परि-णति ही है। बाह्य निमित्त तो उपचारसे ही किसी कार्यके होने या न होनेमें साधक-बाधक माने जाते हैं। निश्चयसे जिस वस्तुकी जिस कालमें जैसी योग्यता होती है तदनुकूल कार्य होता है। निश्चय धर्म और व्यवहार धर्म इसी अन्तरको बतलाते हैं। इसीसे निश्चय दृष्टि उपादेय मानी गई है और व्यवहार दृष्टि हेय।

इस प्रकार यद्यपि दृष्टि-भेदसे धर्म दो बतलाये गये हैं किन्तु धर्म दो नहीं हैं। यह तो एक ही वस्तुको दो पहलुओंसे समझनेका तरीका है। प्रकृतमें धर्म है जीवका स्वभाव और अधर्म है जीवमें विकारी भाव। जहाँ अधर्मका त्याग कर धर्मको धारण करना चाहिये, ऐसा उपदेश दिया जाता है वहाँ इसका यह अर्थ लिया जाता है कि काम, क्रोध, ईर्ष्या, मद, मात्सर्य आदि विकारी भावोंका त्याग कर क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि भावोंको धारण करना चाहिये।

अधिकतर लोकमें बाह्य क्रियाकाण्डपर अधिक जोर दिया है और उसे ही धर्म माना जाता है। आन्तरिक परिणतिके सुधारपर कदाचित् भी ध्यान नहीं दिया जाता है। यह स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें इसका एकाधिकार है। जो अपनेको साधु, त्यागी या व्रती मानते हैं उनमें भी इस अवस्थाका बोलबाला है। हमने अपने-को साधु, त्यागी या व्रती माननेवाले ऐसे कई मनुष्य देखे हैं जो स्वभावसे क्रोधी हैं, मायावी हैं, दम्भी हैं या झूठ बोलते हैं और भोजनके समय आकाश-पातालको एक कर देते हैं। उनका दावा है कि पिण्ड-शुद्धि (शरीर-शुद्धि) के बिना आत्म-शुद्धि हो ही नहीं सकती। इसके लिये वे गायको नहला कर उसका दूध दुहाते हैं। चौकेमें धुले हुए कपड़े पहने ऐसे आदमीको, जिसे दूसरेने स्पर्श कर लिया हो, घुसने नहीं देते। हर किसीको पानी नहीं भरने देते। सिजाए हुए भोजनको चौकेसे बाहर नहीं लाने देते। छूताछूतको मानकर जिन्हें वे छूत समझते हैं उन सबके हाथका भोजन नहीं लेते। गृहत्यागी होकर भी पैसे रखते हैं और इस बातको अच्छा समझते हैं कि हम किसीका न खाकर अपना ही खाते हैं। स्वयं अपने हाथसे दाल, चावल आदि सोधते हैं। दिनका बहुभाग इसीमें निकाल देते हैं। धर्मको स्वीकार करने-करानेमें भेद करते हैं। यह अवस्था केवल इन्हींकी नहीं है ऐसे कई गृहस्थ हैं जो इनका अन्धानुसरण करते हैं।

किन्तु जैनधर्म ऐसे क्रियाकाण्डको स्वीकार नहीं करता। भोजन शुद्धि एक बात है और भोजन शुद्धिके नामपर घृणा और अहङ्कारका प्रचार करना दूसरी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बात है। मनुष्य मनुष्यमें पर्यायगत ऐसी कोई अयोग्यता नहीं है जिससे एक बड़ा और दूसरा छोटा समझा जाय। आजीविकाके अनुसार कल्पित किये गये वर्णोंके आधारसे माने गये उच्च-नीच भेदको जीवनमें कोई स्थान नहीं। कदाचित् जीवन-शुद्धिके आधारभूत आचारके अनुसार स्थूल वर्गीकरण किया भी जा सकता है पर यह वर्गीकरण उन दोषोंसे रहित है जिनको जन्म देकर ब्राह्मणधर्म सर्वत्र उपहासका पात्र बना है। धर्मका जन्म आत्मशुद्धिके लिये हुआ था और इसका उपयोग इसी अर्थमें होना चाहिये। जो आत्मार्थी इस दृष्टिसे जीवन यापन करता है वह न तो स्वयं गलत रास्तेपर जाता है और न कभी दूसरोंको गलत रास्तेपर जानेके लिये उत्साहित ही करता है। यह एक विचित्र-सी बात है कि मनुष्य होनेपर एक धर्मका अधिकारी माना जाय और दूसरा न माना जाय। वह जन्मसे इस अधिकारसे वञ्चित कर दिया जाय। भला एक आत्मशुद्धि कर सके और दूसरा न कर सके यह कैसे सम्भव है। पर्यायगत अयोग्यता तो समझमें आती भी है पर पर्यायगत अयोग्यताके न रहते हुए ऐसी सीमा बाँधना उचित नहीं है। तीर्थङ्करोंने इस रहस्यको अच्छी तरहसे जान लिया था इसलिये उन्होंने आत्म-शुद्धिका दरवाजा सबके लिये समानरूपसे खोल दिया था। उनकी सभामें सब मनुष्योंको समानरूपसे आत्मधर्मका उपदेश दिया जाता था और वे उसे बिना रुकावटके धारण भी कर सकते थे। जो श्रमण होना चाहता था वह श्रमण हो जाता था और जो गृहस्थ अवस्थामें रहकर ही जीवन-शुद्धिका अभ्यास करना चाहता था उसे वैसा करने दिया जाता था। किन्तु जो इन अवस्थाओंको धारण करनेमें अपनेको असमर्थ पाता था उसे बाधित नहीं किया जाता था। वह अपने परिणामोंके अनुसार जीवन यापन करनेके लिये स्वतन्त्र था।

धर्ममें अधिकार और सत्ता नामकी कोई वस्तु नहीं है। वह तो व्यक्तिके जीवनमेंसे आकर जीवनके निर्माणद्वारा इनका ध्वंस करता है। वह बाह्य वस्तुओंपर रंचमात्र—अवलम्बित नहीं है। मन्दिर, मूर्ति और धर्मपुस्तक आदि यद्यपि धर्मके साधन माने जाते हैं किन्तु इनसे धर्मकी प्राप्ति नहीं होती। जो आत्मशुद्धिके सन्मुख होता है उसके लिये आत्मशुद्धिमें ये निमित्त हो जाते हैं इतना अवश्य है। धर्ममें प्रधानता आत्मशुद्धिकी है। आत्मशुद्धिको लक्ष्यमें रखकर जो भी क्रिया की जाती है वह सब धर्म है और आत्मशुद्धिके अभावमें राग, द्वेष या अहङ्कारवश की गई वही क्रिया अधर्म है। यह धर्म और अधर्मका विवेक है।

इस दृष्टिसे विचार करनेपर यह स्पष्टतः अनुभवमें आता है कि धर्मका अर्थ मत-मतान्तर नहीं। धर्मका अर्थ धर्मशास्त्रके नामसे प्रचलित पुस्तकोंका पढ़ जाना या कण्ठस्थ कर लेना भी नहीं। धर्मका अर्थ मन्दिरमें जाकर वहाँ बतलाई गई विधिके अनुसार प्रभुकी उपासना करना भी नहीं। धर्मका अर्थ अपने अपने मतके अनुसार तिथि-त्यौहारोंका मानना या विविध प्रकारके क्रियाकाण्डोंका करना भी नहीं। धर्मका अर्थ जनेऊ, दाढ़ी या चोटीका धारण करना भी नहीं। धर्मका अर्थ नदीमें स्नान करना, सूतक-पातकका मानना, अष्टमी और चतुर्दशीके दिन उपवास करना या अनध्याय रखना, एकान्तमें निवास करना, कायक्लेश करना आदि भी नहीं। ये सब क्रियाएँ धर्म समझकर की तो जाती हैं पर आत्मशुद्धिके अभावमें ये धर्म नहीं हैं इतना उक्त कथनका सार है।

जैनधर्मने ऐसे पाखण्डका सदा ही निषेध किया है जिसका आत्म-शुद्धिमें रंचमात्र भी उपयोग नहीं होता या जिसे लौकिक लाभकी दृष्टिसे स्वीकार किया जाता है।

'जिन' शब्दका अर्थ ही 'जीतनेवाला' है। जिसने विषय और कषायपर विजय पाई है वह भला थोथे पाखण्डको प्रश्रय कैसे दे सकता है? यद्यपि जैनधर्मने बाह्य क्रियाकाण्डका निर्देश किया है अवश्य और उसका आत्मार्थी धर्म समझकर पालन भी करते हैं, पर उसने बाह्य क्रियाकाण्डको धर्मरूपसे स्वीकार करनेका कभी भी दावा नहीं किया है। वह मानता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दक्षिण

(लेखक—श्रीअयोध्याप्रसाद गोयलीय)

मनुष्यके निजी व्यक्तित्त्वसे उसके देश, धर्म, वंश आदिका परिचय मिलता है। अमुक देश, धर्म, समाज और वंश कितना सभ्य, सुसंस्कृत, विनयशील, सेवाभावी और सच्चरित्र है, यह उस देशके मनुष्योंके व्यक्तित्त्वसे लोग अनुमान लगाते हैं। कहाँ कैसे-कैसे महापुरुष हुए हैं, किस धर्मके कितने उच्च सिद्धान्त हैं, इस पुरातत्त्वका ज्ञान सर्व-साधारणको नहीं होता। वह तो व्यक्तिके वर्तमान व्यक्तित्त्वसे खरे-खोटेका अनुमान लगाते हैं।

दक्षिण अफ्रीकामें शुरू-शुरूमें भारतसे बहुत ही निम्न कोटिके मनुष्योंको लेजाया गया और उनसे कुलीगीरीका काम लिया गया। उनकी घटिया मनोवृत्ति और महनत-मजदूरीके कार्योंसे भारतके सम्बन्धमें वहाँ वालोंकी बहुत ही भ्रामक धारणाएँ बन गईं। और वहाँ कुली शब्द ही भारतीयताका द्योतक होगया। हर भारतीयको अफ्रीकामें कुली सम्बोधित किया जाने लगा। यहाँ तक कि महात्मा गान्धी भी वहाँ इस अभिशापसे नहीं बच पाये।

कलकत्तेमें अक्सर मोटर-ड्राइवर सिक्ख हैं। एकबार वहाँ गुरु नानकके जुलूसको देखकर किसी अंग्रेजने बंगालीसे पूछा तो जवाब मिला—"यह ड्राइवरोंके मास्टरका जुलूस है। सुना है यह मोटर चलानेमें बहुत होशियार था।" जवाब देनेवालेका क्या कुसूर? वह सिक्ख मोटर-ड्राइवरोंकी बहुतायत और मौजूदा व्यवहारके परे कैसे जाने कि सिक्खोंमें बड़े-बड़े त्यागी, तपस्वी, शूरवीर, राजे-महाराजे हुए हैं और हैं।

यूरुपकी किसी लायब्रेरीमें एक भारतीय पहले-पहल गया और वहाँ किसी पुस्तकसे चित्र निकाल लाया। दूसरे दिन ही बोर्ड लगा दिया............ .... (भारतीयोंका प्रवेश निषिद्ध है)। सन् १९१७में अपने रिश्तेदार महावीरजी होते हुए भरतपुर भी उतरे। मैं भी उनके साथ था। महाराज भरतपुरके रंगमहल, मोतीमहल आदि देखने गये तो एक स्थानमें औरतोंको नहीं जाने दिया गया। पूछनेपर मालूम हुआ कि कोई औरत कुछ सामान चुराकर लेगई थी, तबसे औरतोंका प्रवेश वर्जित कर दिया गया है।

विदेशोंमें भारतियोंके लिये उनकी परतन्त्रता तो अभिशाप थी ही, कुछ कुपूतोंने भारतीयताके उच्च धरातलका परिचय न देकर जघन्य ही परिचय दिया।

कि जो आत्मधर्मसे विमुख है वह तो मिथ्यादृष्टि है ही किन्तु जो आत्मधर्म समझकर इस क्रियाकाण्डका पालन करता है वह भी मिथ्यादृष्टि है। जैनधर्मने भावोंकी शुद्धिपर जितना अधिक जोर दिया है उतना क्रियाकाण्डपर नहीं। यह इसीसे स्पष्ट है कि परिपूर्ण धर्मकी प्राप्ति वह सब प्रकारकी क्रियाके अभावमें ही स्वीकार करता है।

यह धर्मका रहस्य है जो आत्मार्थी इस रहस्यको जानकर जीवनमें उसे उतारता है वास्तवमें उसीका जीवन सफल है। क्या वह दिन पुनः प्राप्त होगा जब हम आप सभी धर्मके इस रहस्यको हृदयङ्गम करनेमें सफल होंगे? जीवनका मुख्य आधार आशा है। हम आशा करते हैं कि हम आप सभीको वे दिन पुनः प्राप्त होंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इससे समस्त यूरुपमें भारतके प्रति बड़ी भ्रामक धारणाएँ बन गईं।

अधिकांश यहाँके राजे-महाराजे वहाँ रङ्ग-रेलियाँ करने गये तो, आमलोगोंको विश्वास होगया कि भारतीय ऐय्याश और पैसेवाले होते हैं। और इसी विश्वासके नाते यूरुपियन महिलाएँ इण्डियन्सके पीछे मक्खियोंकी तरह भिनभिनाने लगीं।

अमेरिका-कनाडामें ग़रीब तब्क़ेके सिक्ख महनत-मज़दूरी करने पहुंचने लगे तो वहाँ समझा गया कि इण्डियन बहुत निर्धन होते हैं, अतः नियम बना दिया गया कि निर्धारित निधि दिखाये बिना कोई भी भारतीय अमरीकन-सीमामें प्रवेश नहीं कर सकेगा।

भारतमें जब इंग्रेजोंका प्रभुत्व जमने लगा तो उन्होंने नीति निश्चित कर ली कि भारतमें उच्च श्रेणी के इंग्रेज ही जाने पाएँ। ताकि शासित जातिपर शासकवर्गका अधिकाधिक प्रभाव जम सके। उक्त नीतिके अनुसार भारतमें जबतक इंग्रेज उच्चकोटि-के आते रहे, उनके सम्बन्धमें भारतीयोंकी धारणा उच्चसे उच्चतर बनती गई। लोगोंका विश्वास दृढ़ होगया कि हिन्दुस्तानी न्यायाधीश, हाकिम, व्यापारी और मित्रसे कहीं अधिक श्रेष्ठ इंग्रेज न्यायाधीश, हाकिम, व्यापारी और मित्र होते हैं। ये बातके धनी, वक्तके पाबन्द, उदार हृदय और ईमानदार होते हैं।

परिणाम इस धारणाका यह हुआ कि इंग्रेज जज, हाकिम, डाक्टर, वकील, इञ्जीनियर, व्यापारी आदि हिन्दुस्तानियोंकी नजरोंमें हिन्दुस्तानियोंसे अधिक निष्पक्ष, योग्य और चतुर बन गये। यहाँ तक कि विलायती वस्तुके सामने हम स्वदेशी वस्तुको हेच समझने लगे। हमारा अभीतक विश्वास भी है कि विलायती वस्तु खालिस और उत्तम होती है। स्वदेशी नकली, मिलावटी और घटिया होती है। लिखा कुछ होगा और माल कुछ और होगा। ऊपर कुछ और अन्दर कुछ और होगा। हिन्दुस्तानीके व्यापार-व्यवहारमें स्वयं हिन्दुस्तानीको नैतिकताकी आशङ्का बनी रहती है। इंग्रेजोंकी उदारता-नैतिकता-की यहाँ तक छाप पड़ी कि बड़ेसे बड़े भारतीय पूञ्जीपतिके सामानको छोड़कर कुली इंग्रेजका सामान उठायेगा, ताँगेवाले, टैक्सीवाले भी पहले इंग्रेजको ही तरजीह देंगे। यहाँतक कि मँगते भी पहले उन्हींके आगे हाथ पसारेंगे।

इंग्रेजोंके उक्त व्यक्तित्वका जहाँ प्रभाव पड़ा, वहाँ उनके अवगुणोंसे भी लोग शङ्कित हुए। टामी लोगोंमें सच्चरित्र और विश्वस्त भी रहे होंगे; परन्तु इनका किसी ने विश्वास नहीं किया। ये हमेशा यूरुपके कलङ्क समझे गये। यूरुपियन महिलाओंकी स्वच्छन्दतासे भारतीय इतना घबराते थे कि कोई भी भला आदमी उनके सम्पर्कमें आनेका साहस नहीं करता था। लोगोंका विश्वास था:—

'काजरकी कोठरीमें कैसो हू सयानो जाय,
काजरकी एक रेख लागे पर लागे है।'

एक बार एक उद्योगपतिने मुझसे कहा था कि यदि मेरे बराबरके डिब्बेमें भी कोई यूरुपियन महिला सफ़र कर रही हो तो मैं तत्काल उस डिब्बेको छोड़ देता हूं। यह लोग कब क्या प्रपञ्च रच दें, अनुमान नहीं लगाया जा सकता। एक ही आदमीके अच्छे-बुरे व्यक्तित्वसे लोग अच्छे-बुरे अनुमान लगाते रहते हैं।

२-४ आदमियोंकी तनिक-सी भूल उनके देश, धर्म, समाजवंशके मार्गमें पहाड़ बनकर खड़ी होजाती है। १०-५ ब्राह्मणोंने लोगोंको विष दे दिया तो लोग कह बैठते हैं ब्राह्मणोंका क्या विश्वास? नाथूराम विनायक गोडसेके कारण—विदेशोंमें हिन्दुओंको और भारतमें ब्राह्मणों महाराष्ट्रों, विनायकों और गोडसोंको कितना कलङ्कित होना पड़ा है?

ईसाईयोंने अपने सेवाभावी व्यक्तित्वकी ऐसी छाप मारी है कि उनके सायेसे भी घृणा करनेवाले बड़े-बड़े तिलकधारी अपनी बहू-बेटियोंको बच्चा प्रसव-के लिये मिशनरी हॉस्पिटल्समें निःशङ्क अकेली छोड़ आते हैं। सबका अटूट विश्वास है कि उतनी सेवा-परिचर्या घरवालोंसे हो ही नहीं सकती।

मुसलमानोंमें अनेक सदाचारी, तपस्वी, और मुन्सिफ हुए हैं। परन्तु यहाँ जो उन्होंने अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्तित्वका असर डाला है, उसको देखते हुए कोई हिन्दू स्त्री अकेली उनके मुहल्लोंसे निकलनेका साहस नहीं कर सकती। जनता तो व्यक्तियोंके वर्तमान व्यक्तित्वसे अपनी धारणा बनाती है। उनके पूर्वज बादशाह थे या पैग़म्बर, इससे उसे क्या सरोकार?

अलीगढ़के ताले और लुधियानेकी नक़ली सिल्क एजेण्टोंके धोखोंसे तङ्ग आकर, अलीगढ़ी और लुधियानवी लोगोंपरसे ही जनताका विश्वास उठ गया। कई धर्मशालाओंमें उनके ठहरनेपर भी आपत्ति होती देखी गई है।

कुछ मारवाड़ी फूहड़ और लीचड़ होते हैं। फर्स्ट क्लासमें सफ़र करें तो बाथरूमके बेसिनको मिट्टीसे भरदें, डिब्बेमें पानीकी बाल्टी छलका-छलका कर सिलबिल-सिलबिल कर दें। मारवाड़ी औरतें घूँघट मारे रहेंगी, पर सेटफार्मपर बारीक धोती पहिन कर नहाएँगी और धोती जम्पर बदलते हुए नङ्गी भी ज़रूर होंगी। कलकत्तेसे बीकानेर जाते-जाते बाबुओं और कुलियोंको घूंसके पचासों रुपये देते जाएँगे, परन्तु दो रुपये देकर लगेज रसीद नहीं लेंगे। इन १००-५० फूहड़ोंके कारण अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित नैतिक मारवाड़ियोंको भी कुली और बाबूसे तङ्ग होना पड़ता है। चुङ्गीका जमादार ग़ैर क़ानूनी वस्तुओंके आयात-निर्यात करनेवाले बदमाशोंको तो नजरन्दाज़ कर देगा, परन्तु सुसभ्य सुसंस्कृत मारवाड़ीका ट्रङ्क विस्तर ज़रूर खुलवायेगा। क्योंकि उसकी धारणा बन गई है कि मारवाड़ीको तङ्ग करनेपर पैसा ज़रूर मिलता है।

एक सम्प्रदाय और प्रान्त विशेषके नौकरीके इच्छुकोंको कलकत्ते-बम्बईमें यह कहकर टाल दिया जाता है—"नौकरी तो है परन्तु छोकरी नहीं"। अर्थात् जहाँ छोकरी नहीं, वहाँ तुम नौकरी करोगे नहीं और जहाँ छोकरी होगी तुम लेकर ज़रूर भागोगे।

भारतमें कई जातियाँ ऐसी हैं कि लोग राह चलते रात होनेपर जङ्गलोंमें पड़ रहना तो ठीक समझते हैं किन्तु उनके गाँवमेंसे गुजरना मंजूर नहीं करते।

दो-चारके खरे-खोटे आचरण और व्यक्तित्वके कारण समूचा देश, धर्म, समाज, वंश कलङ्कित हो जाता है। और यह कलङ्क ऐसे हैं कि नानीके पाप धेवतोंको भुगतने पड़ते हैं।

एक बार एक सज्जन (सम्भवतया मुनि तिलकविजय) वर्मा गये। वहाँ दो वर्मियोंने उनका यथेष्ट सत्कार किया। प्रवासयोग्य उचित सहायता पहुँचाई। जब वे वर्मासे प्रस्थान करने लगे तो वर्मी मेज़बानोंका आभार मानते हुए, बार-बार अपने लिये कोई सेवा-कार्य बतलानेके आग्रह करनेपर वर्मियोंने सकुचाते हुए कहा—यदि वर्मा-प्रवासमें आपको वर्मियोंकी ओरसे कोई क्लेश पहुंचा हो या उनके स्वभाव-आचरण आदिके प्रति कोई अपने धारणा बना ली हो तो कृपाकर आप उसे समुद्रमें डालते जाएँ। अपने देशवासियोंको इसका आभास तक भी न होने दें।

क्यों? यही तनिक-तनिक-सी धारणाएँ देश-समाजके लिये पहाड़ जैसी कलङ्क बनकर उभर आती हैं। बनियेके यहाँ लोग बिना रसीद लिये रुपया दे आते हैं। जो देना-पावना उसकी बही बतलाती है, ठीक मान लेते हैं; परन्तु बैङ्कके बड़ेसे बड़े अफ़सरको बिना रसीद एक पाई भी कोई नहीं देता न पाई-टू-पाई हिसाब मिलाये बिना कोई विश्वास ही करता है।

इसका भी कारण यही है कि बनिया लेन-देनमें अधिक प्रामाणिक समझ लिया गया है। जितना-जितना अब वह पतनकी ओर जारहा है, उतना ही वह बदनाम भी होता जारहा है।

शिकारपुर, भोगाँव, बलियाके निवासी मूर्ख और बिहारी बुद्धू क्यों कहलाते हैं? क्या इन जगहोंमें सारे भारतके मूर्ख इकट्ठे कर दिये गये हैं, अथवा यहाँ मूर्ख और बुद्धू पैदा ही होते हैं? नहीं, इन शहरोंके १०-५ गधोंने बाहर जाकर इस तरहकी हरकतें कीं कि लोगोंने उनसे उनके प्रान्त और शहरके सम्बन्धमें उपहासास्पद धारणाएँ बना लीं। वे गधे तो न जाने कबके मर गये होंगे, पर उनके गधेपनका प्रसाद वहाँ वालोंको बराबर मिल रहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका तनिक लम्बी होगई। प्रत्येक व्यक्तिको यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसके कारण उसके देश-समाज आदि प्रतिष्ठित न हो सकें तो बदनाम भी न होने पाएँ। प्रसङ्गवश आपबीती कुछ घटनाएँ दी जारही हैं।

(१)

दिल्लीमें १९३०के नमक सत्याग्रहके पहले जत्थेमें ५ सत्याग्रहियोंमें हम दो जैन थे। बाक़ी तीनमेंसे १ मुसलमान और दो बाहरके मजदूरवर्गसे थे। ७०-८० हज़ारकी भीड़, हमें देहलीसे सत्याग्रह स्थल (सलीमपुर-शाहदरा) की ओर पहुंचाने चली तो मार्गमें क़िलेके सामने जैन लालमन्दिर आया। प्रत्येक शुभ कार्य्योंमें जैनी मन्दिर जाते ही हैं। अतः हम दोनों भी मन्दिरको देखते ही भीड़को रोककर दर्शनार्थ गये। इस तनिक-सी बातसे देहलीमें यह बात फैल गई कि देहलीके दोनों सत्याग्रही जैन हैं। जैनोंने सबसे आगे बढ़कर अपनेको भेट चढ़ाया है। हाँ, भेट ही, क्योंकि उस समय किसीको गवर्नमेण्टके इरादेका पता नहीं था। हमें जब जत्थेमें लिया गया तब काँग्रेस-अधिकारियोंने स्पष्ट चेतावनी दे दी थी—"सम्भव है तुमपर घोड़े दौड़ाएँ जाएँ, गोलियाँ चलाई जाएँ, लाठियाँ बरसाई जाएँ, अङ्गहीन या अपाहिज बनाये जायें"। हर तरहके खतरोंको ध्यानमें रखकर ही साबुत क़दम और पूर्ण अहिंसक बने रहनेकी हमने एक लाख जन-समूहमें प्रतिज्ञा की थी।

अतः लोगोंको जब मालूम हुआ कि दोनों जैन हैं तो लोग अश-अश करने लगे और जैन तो गले मिल मिलकर रोने लगे। "भाई तुम लोगोंने हमारी पत रखली"। नमक-सत्याग्रह हुआ। पुलिसने अण्डकोष पकड़कर घसीटे; नमकका गरम पानी छीनाझपटीमें शरीरोंपर गिरा। परन्तु सदैव इसी 'पत'का ध्यान बना रहा। व्यक्ति तो हमारे जैसे अनगिनत पैदा होंगे, पर 'पत' गई तो फिर हाथ न आयेगी। इसी भावनाने लहमेभरको विचलित नहीं होने दिया।

(२)

जेल पहुंचनेपर मालूम हुआ कि राजनैतिक बन्दियोंके लिये शामके भोजनकी व्यवस्था दिनमें न होकर रात्रिमें होती है। हालाँकि जेल-नियमानुसार सूर्यास्तसे पूर्व सब क़ैदी भोजन कर लेते हैं। परन्तु राजनैतिक बन्दी अपना भोजन रात्रिको ही बनवाते थे। रात्रिको भोजन न लेनेपर एक नेता बोले—"यहाँ दिन-विनका नियम नहीं चल पायेगा, इस पाखण्डबाज़ीको अब धता बताओ"। मैंने प्रकटमें तो कुछ नहीं कहा, पर मनमें संकल्प किया—यह नियम अब डङ्केकी चोट निभेगा। हायरे हम, और हमारे नियम! किसीसे मैंने कुछ कहा नहीं; उन लोगोंके भोजन-समय चुपचाप टल गया। परन्तु फिर भी पाखण्डीका फतवा नाजिल हो ही गया! होना तो यह चाहिये था कि हमारे भूखे रहनेपर हमारे साथी भी रात्रिमें भोजन करते हुए कुछ सङ्कोच अनुभव करते और व्रतकी विशेषता और दृढ़ताकी प्रशंसा करते। इसके विपरीत हमारे मुँहपर ही इसे पाखण्ड बताया जारहा है। मालूम होता है कोई न कोई त्रुटि हममें दिखाई अवश्य देती है:—

नियाज़े इश्क़में खामी कोई मालूम होती है।
तुम्हारी बरहमी क्यों बरहमी मालूम होती है॥

भाई नन्हेमलका जेलमें साथ छूट गया। हम दोनों जुदा-जुदा गिरफ्तार किये गये थे। अतः मैं अकेला ही उस समय जेलमें जैन था! मैंने गोयलीय के बजाय अपनेको तब जैन लिखना प्रारम्भ कर दिया था। २-४ रोज़ शामको भूखा रहना पड़ा होगा कि दिल्ली जेलवालोंने हम सी-क्लास बन्दियोंके लिये भोजनका प्रबन्ध हमारे सुपुर्द कर दिया। और हमने ऐसा प्रबन्ध किया कि सब सूर्यास्तसे पूर्व भोजन कर लेते। हमारी भोजन-व्यवस्था, स्वच्छता, प्रेम-व्यवहारको देखकर सभी प्रसन्न हुए। यहाँ तक कि उन नेता महोदयके मुँहसे भी अनायास निकल ही गया—

"भई जैनोंकी भोजन-व्यवस्था और स्वच्छताको कोई नहीं पहुँच सकता! इन लोगोंका दिनमें भोजन करना और पानी छानकर पीना तो अनुकरणीय है। रात्रिमें लाख प्रयत्न करो कुछ न कुछ जीव-जन्तु पेटमें चले ही जाते हैं और भोजन ठीक नहीं पचता"।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३)

दिल्लीसे मिण्टगुमरी जेल भेज दिया गया। अण्डमानमें स्थान रिक्त न होनेके कारण पंजाबके जीवन-पर्यन्तके सजायाफ्ताक़ैदी यहीं रक्खे जाते थे। हमें भी यहाँ एक वर्ष रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। ४ बजेका समय था, मैं अपना बान बाँटकर बैठा ही था कि लाला बनारसीदास (जेलबाबू) आये और किताबोंका पार्सल दिखाकर बोले—

"यह पार्सल आपका है ?"

"जी।"

"क्या आप जैन हैं ?"

"जी।"

"आप लोग, सुना है गोश्त नहीं खाते" ?

(व्यंग्यात्मक हँसी)

"जी, हम लोग गोश्त नहीं खाते"।

"क्यों ?"

"जैनोंका विश्वास है कि जो किसीमें जान नहीं डाल सकता वह किसीकी जान नहीं ले सकता। हमें दूसरों के साथ वही व्यवहार करना चाहिये, जिस व्यवहार के लिये हम उनसे इच्छुक हैं। जैसी करनी वैसी भरनीके जैन क़ायल हैं। आज जो शक्तिके मदमें दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं, उन्हें एक न एक रोज़ अपराधियों-की श्रेणीमें खड़ा होना होगा।

दादख्वाहीके लिये हश्रका मैदाँ होगा।
हाथ मक़्तूलका क़ातिलका गिरेबाँ होगा॥

"ओह, माफ करना, मैंने आपसे ऐसी बात की जो आपके ज़मीरके ख़िलाफ थी।"

"नहीं, यह तो आपका सौजन्य है जो आपने एक कैदीसे बात की, वर्ना यहाँ कौन किसीसे बात करता है ?"

"सुना है, जैन झूठ नहीं बोलते ?"

"हाँ, बोलना तो नहीं चाहिये। पर, कलङ्क तो चन्द्रमामें भी होता है। क्या कहा जासकता है, पाँचों अङ्गुलियाँ यकसाँ नहीं होतीं।"

"इस पार्सलमें किताबें कैसी आई हैं ? राजनैतिक या सरकारविरोधी तो नहीं हैं ?"

"जी, मैं देखकर अभी बतलाये देता हूं। आप विश्वास रखें जेल-नियम-विरुद्ध किताब मैं एक भी नहीं रक्खूँगा।"

किताबें धर्मबन्धु लाला पन्नालालजी अग्रवालने दिल्लीसे सब धार्मिक भेजी थीं। किताबें लाला बनारसीदासको भी पढ़ने दी गईं तो उन्हें गोश्तसे घृणा होने लगी। उन्होंने कई बार कहा कि इन किताबोंके पढ़नेसे हम पति-पत्नीके दिलपर बड़ा असर हुआ है। वह अक्सर मुझसे तत्वचर्चा करने आता था।

(४)

जेलमें साग-दालमें प्याज-लहसन इतना पड़ता था कि खाना तो दरकिनार उसकी गन्धसे ही जी ऊपर-ऊपरको आने लगता था। अतः क़रीब ५-६ माह रूखी रोटी, पानी या गुड़के सहारे पेटमें उतरती। एक रोज़ भोजन करते समय लाला बनारसीदास आ पहुँचे। इस तरह रूखी रोटी खाते देखकर सबब पूछा तो साथियोंने बतला दिया कि यह प्याज लहसन नहीं खा सकते। सुना तो बेहद बिगड़े। तुम लोगोंने मुझे क्यों नहीं कहा ? ये रूखी रोटी खाते रहते हैं और तुम लोग मजेसे इनके सामने दाल-साग खाते रहते हो। यदि तुम लोग ५० आदमी तैयार होजाओ तो आजसे ही प्याज-लहसनरहित दाल-सागका प्रबन्ध किया जा सकता है। साथियोंको इसमें क्या ऐतराज होता, वह तो मजबूरन खाते थे। दूसरे दिन ६०-७० के लिये प्याज-लहसनरहित भोजन आने लगा। मिण्टगुमरीमें भोजन जेलका बना ही मिलता था। दिल्लीकी तरह हमारा प्रबन्ध नहीं था।

(शेष ९वीं किरणमें)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाँच प्राचीन दि० जैन मूर्तियाँ ★ ★

(लेखक—मुनि कान्तिसागर)

ता० २५–७–४८ रविवारका दिन था, मैं कुछ लेटे हुए डॉ० भांडारकरका जैन मूर्तिशास्त्रका वह नोट पढ़ रहा था जो 'आर्क्योलोजिक सर्वे ऑफ इंडिया' इतिवृत्तमें प्रकट हुआ है। था भी निश्चिन्त, रविवारके दिन मैं भी अपनी लेखनीको कष्ट नहीं देता। यों तो "आराम" जैनमुनियोंकी जीवन-विषयक डिक्शनरीमें नहीं होता, भगवान् महावीरने स्पष्ट शब्दोंमें बारबार कहा है "समयं गोयम मा पमाए" हे गौतम क्षणमात्र भी प्रमाद न कर। उपर्युक्त नोट पूरा करके आँखें बन्द होना ही चाहती थीं, रोकना भी मैंने उचित नहीं समझा, इतनी देरमें मेरे सामने एक सज्जन आ पहुंचे जो पुरातत्वमें ही एम० ए० हैं, इसी विषयपर आचार्यत्वके लिये थीसिस—महानिबन्ध—भी लिखी है। मेरा मन तो था कि कह दूं कल आइये परन्तु आपने आते ही मेरे सम्मुख छह चित्र उपस्थित कर दिये। मुझे तो अत्यानन्द हुआ; क्योंकि पुरातत्त्व-संशोधनका रोग जिसे लगा हो वह तो अपनी गवेषणा-विषयक रुचिकी पूर्तिके लिये पहाड़ों और खण्डहरोंमें घूमता ही रहता है उसके लिये मार्गमें आनेवाली बाधाएँ कोई मूल्य नहीं रखतीं, जब मुझे तो घर बैठे ही ये चीजें प्राप्त होगई और वह भी जैन पुरातत्त्वसे सम्बन्ध रखने वाली, फिर प्रसन्नता क्यों न हो? दिल उछलने लगा। मैंने बहुत चेष्टा की कि मैं इन्हें अभी अपने पास ही रखूँ कल लौटा दूंगा, पर जो सज्जन ये चित्र लाये थे उनके स्वामीकी आज्ञा रखनेकी न थी, न वे मुझे अभी नोट्स लेने देना ही चाहते थे। मैंने इन्हें खूब ग़ौरसे देखा कि इनकी कला वगैरहका ठीकसे अध्ययन करलूँ और बादमें कुछ पंक्तियाँ लिख लूँगा जिससे और अपरिचित जन भी इनके परिचयसे लाभान्वित हों, परन्तु मेरा अनुभव है कि जब तक मूल वस्तु—अवशेष—सम्मुख उपस्थित न हो तब तक उनका वास्तविक परिचय उचितरूपेण लिपि नहीं किया जा सकता, क्योंकि कलाकार (पाठक भूलसे मुझे ही कलाकार न समझ बैठें) जब सामनेकी वस्तु देखता है और कलम हाथमें उठाता है तब उसकी मनोवृत्तियाँ केन्द्रित होकर उसके भीतर प्रवेश करनेकी चेष्टा करती हैं। वह सफल कहाँ तक होता है इसका निर्णय करना एतद्विषयक रुचि रखनेवाली जनताका काम है। सफल कलाकारका जीवन भी कई विलक्षणताओंका एक समन्वयात्मक केन्द्र है। उसके मस्तिष्ककी रेखाएँ ही इसका सूचनात्मक प्रतीक हैं। वह कभी तो शान्त-मुद्रामें रहता है, कभी गांभीर्य भावोंकी मूर्तिसम प्रतीत होने लगता है और सबसे बड़ी विशेषता है वह अप्रसन्न कभी नहीं होता, जैसे कोई शिकारी शिकार न मिलनेपर भी—निराश होना मानो उसके जीवनके बाहरकी ही वस्तु हो। यदि स्पष्ट कह दिया जाय तो कलाकारका हृदय एक समुद्रके समान गम्भीर होता है। नदी-नाले जैसे एकत्र होकर रत्नाकरमें विलीन होजाते हैं ठीक उसी प्रकार ज्ञान-विज्ञानकी समस्त धाराएँ उसके हृदयमें समा जाती हैं, बिना इनके संगमके वह सफल कलाकार माना ही नहीं जासकता; तभी तो वह प्रस्तर और धातुओंपर प्रवाहित भावोंको समझकर विवेचना करनेको उद्यत रहता है। भावनाशील हृदय प्रत्येक स्थानको अपने विशेष दृष्टिकोणसे देखता है। यही कारण है कि जहाँ कीचड़ भी न हो वहाँ वह उत्तम सरोवर देखता है। कहनेका तात्पर्य यह कि जहाँपर पाषाणोंका या कलात्मक अवशेषोंका ढेर हो वे हैं तो प्रस्तर, पर कलाकारके लिये वे तात्कालिक सांस्कृतिक प्रवाहोंका प्रधान केन्द्र मालूम देते हैं। कलाकारको दुनिया ही निराली है। इसमें जो कुछ क्षण विचरण करनेका सौभाग्य प्राप्त करता है वही उपर्युक्त पंक्तियोंका साक्षात् अनुभव करनेकी क्षमता रखता है।

हाँ तो अब मैं अपने मूल विषयपर आजाऊँ, मुझे नोट्स न लेने दिये तब कुछ रञ्ज-सा अवश्य हुआ इसलिये कि इतनी सुन्दर जैनकलात्मक कृतिएँ होते हुए भी आज जैनी इनसे क्यों अपरिचित रहें? क्या प्रतिमा-निर्माण करवानेवालोंका यही उद्देश्य था? बिल्कुल नहीं। परन्तु जब मैंने जाना कि उसके स्वामीके यहाँ दो दिन चित्र रह सकते हैं और मैं वहाँ जाकर नोट करलूँ तो उन्हें आपत्ति नहीं होगी, तब मैंने भी स्वीकार कर लिया। बादमें मैंने अपने दिलमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यही अन्दाज लगाया कि चित्र उसने इस भयसे शायद न रखे होंगे कि मैं कहीं उनकी प्रतिकृति उतरवा लूँ या ब्लॉक बनवा लूँ, अस्तु।

चित्र चले गये पर मेरा मन उन्हींमें लगा रहा, सोच रहा था क्या ही अच्छा हो यदि रात छोटी होजाये और दिन निकलते ही मैं अभिलषित कार्यको कर डालूँ, पर अनहोनी बात थी।

तारीख़ २६-७-४८ को मैं बिहार प्रान्तके बहुत बड़े कलात्मक वस्तुसंरक्षकके यहाँपर सहयोगी बाबू पदमसिंह बललियाको लेकर पहुंचा ही। १२ बजनेका समय रहा होगा, मैं तो चाहता था कि वे श्रीमन्त मुझे चित्र अवलोकनार्थ देकर आरामकी नींद ले लें ताकि मैं शान्ति पूर्वक अपना काम निपटालूं, पर वे भी थे धुनके पक्के, बहुत धूप-छाँह देख चुके थे, मैं तो उनके सामने बच्चा था। चित्र मेरी टेबिलपर आ गये और पाँच-सात मिनटके बाद वापिस लेनेकी भी तैयारी करने लगे। मैंने कहा, देखिये, ये काम उतना आसान नहीं कि पाँच-दस मिनटमें इनको समुचित रूपसे समझ लिया जाय। वे फिर अपने कामपर गये और मैं अपना और सारा काम छोड़कर प्रतिमा-चित्रोंका परिचय लिखने लगा, बीच-बीचमें वे आये और उनके मस्तिष्ककी रेखाओंमें मैं पढ़ रहा था कि जो कुछ काम मैं कर रहा हूँ वह आपको मान्य नहीं है। पर मैं भी मुँह नीचे दबाये लिखता ही गया, जो कुछ भी लिखा वही आपके सामने समुपस्थित करते हुए मैं आनन्दका अनुभव करता हूं। हो सकता है इनके परिचयसे और संस्कृतिप्रेमी भी मेरे आनन्दमें भाग बटावें।

१—यह प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथजीकी है जैसा कि मस्तकोपरि सप्त फनोंसे सूचित होता है। निम्न भागमें सर्पाकृति नहीं है। यह प्रथा ही प्राचीन कालीन प्रतिमाओंमें नहीं थी या कम रही होगी। उपर्युक्त फने इतने सुन्दर बने हैं कि मध्य भागकी रेखाएँ भी सुस्पष्ट हैं। सर्पाकृति पृष्ठ भागीय चरणसे प्रारम्भ हुई है जैसा कि ढङ्कगिरिमें प्राप्त प्रतिमाओंमें पाई जाती है। प्रतिमा सर्वथा नग्न है। इसका शारीरिक गठन और तदुपरि जो पालिशकी स्निग्धता है उससे सौंदर्य स्वाभाविकतया खिल उठता है। हाथ घुटने तक लगते हैं और इस प्रकारसे अङ्गुलियाँ रखी हुई हैं मानो यह सजीव है। प्रतिमाका मुखमण्डल बहुत ही आकर्षक और शान्तभावोंको लिये हुए है। होठोंसे स्मितहास्य फरक उठता है। मस्तकपर घुँघरवाले केशोत्कीर्णित हैं। उष्णीश भी है। आँखें कायोत्सर्ग मुद्राकी स्मृति दिलाती हैं। वाम और दक्षिण भागमें यक्षिणी-यक्ष चामर लिये अवस्थित हैं। चामर जटिल हैं। दोनोंकी प्रभावलि और मुखमुद्रा शान्त है परन्तु यक्षिणीकी जो मुद्रा कलाकारने अङ्कित की है उसमें स्त्री-सुलभ स्वाभाविक चाञ्चल्य विद्यमान है। उभय प्रतिमाओंके उत्तरीय वस्त्र बहुत स्पष्ट हैं। गलेमें माला, कर्णमें केयूर और भुजदण्डमें बाजूबन्ध हैं। यक्षिणीकी जो प्रतिमा है उसके वाम चरणके पास एक स्त्री स्त्रियोचित समस्त आभूषणोंसे विभूषित होकर अंजली धारे भक्तिपूर्वक नमस्कार-वन्दना-करती हुई बनाई गई है। मुखमण्डलपर सूक्ष्म दृष्टि डालनेसे अवभासित होता है कि उनके हृदयमें प्रभुके प्रति कितनी उच्च और आदर्शमय भावनाएँ अन्तर्निहित हैं। ऐसी प्राकृतिक मुद्राएँ कम ही देखनेमें आती हैं। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह स्त्री कौन होसकती है? मेरे मतानुसार तो यह मूर्तिनिर्माण करवानेवाली श्राविका ही होनी चाहिए; क्योंकि प्राचीन और मध्यकालीन कुछ प्रतिमाएँ मैंने ऐसी भी देखी हैं जिनमें निर्मापकयुगल रहते हैं। उभय प्रतिमाओंके उपरि भागमें पद्मासनस्थ दोनों ओर दो जिन-प्रतिमाएँ हैं। तदुपरि दोनों ओर आकाशकी आकृतिपर देवियाँ हस्तमें पुष्पमाला लिये खड़ी हैं, उनका मुखमण्डल कहता है कि वे अभी ही भगवानको मालाओंसे सुशोभित कर अपने भक्तिसिक्त हृदयका सुपरिचय देंगी। मालाओंके पुष्प भी बहुत स्पष्ट हैं। मस्तकपर छत्राकृति है। मूल प्रतिमाका निम्न भाग उतना आकर्षक और कलापूर्ण नहीं। मध्यमें धर्मचक्र और उभय तरफ विपरीतमुखवाले ग्रास हैं। परन्तु प्रतिमापर निर्माणकाल-सूचक खास संवत् या वैसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई उल्लेख नहीं है। अतः प्रतिमाकी निर्माणकलापरसे ही इसकी शताब्दी निर्णीत करनी होगी। मैं और चित्रवाहक सज्जन इसे अन्तिम गुप्तकालीन कृतियोंमें समाविष्ट करते हैं। पूर्वीय कलाका प्रभाव है। इस टाइपकी और भी अनेक शिल्पकृतियाँ मगधमें उपलब्ध होचुकी हैं।

लम्बाई, चौड़ाई और मुटाई इस प्रकार चित्रके पृष्ठ भागमें उल्लिखित थीं— २२॥, १६॥ ४ इंच है।

२—प्रस्तुत प्रतिमा उपर्युक्त प्रतिमाके अनुरूप है। विदित होता है कि एक ही कलाकारकी दो कृतियाँ हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि ऊपर वाली मूर्तिमें पद्मासनस्थ २ प्रतिमाएँ हैं जब इसमें चार हैं और निम्नभागमें भी धर्मचक्रके दोनों ओर पद्मासनस्थ २ प्रतिमाएँ हैं। ग्रास नहीं हैं। परन्तु भव्यतामें कुछ उतरती हुई है। समय वही प्रतीत होता है। नाप, १२, १२ ०॥", ३॥ इंच है।

३—एक लघुतम प्रस्तर चट्टानपर उत्कीर्णित है। इसकी रचना दोनोंसे सर्वथा भिन्न है। उभय स्कंधप्रदेशसे सटी हुई २ प्रतिमाएँ और निम्न भागमें यक्षयक्षिणिएँ हैं। ग्रास, धर्मचक्र समान हैं। मूलका मुख बड़ा शान्त है, पर इसकी नासिका कुछ चपटी है जो बुद्ध धर्मकी आंशिक देन है क्योंकि बौद्ध कलावशेषोंमें चपटी नाक आती है जैसाकि बुद्धदेवकी जातिका ही गुण है। नैपालका प्रभाव माना जाय तो आपत्ति नहीं। नाप १३।, ६, ३॥ इञ्च है। नग्न है। इसे मैं पाल कालीन प्रतिमा मानता हूँ।

४—यह प्रतिमा कलाकौशलकी दृष्टिसे उतनी महत्वपूर्ण भले ही न हो पर मूर्तिनिर्माणशास्त्रके उल्लेखोंके सर्वथा अनुरूप है। इसकी उठी हुई छाती एक सैनिकका स्मरण दिलाती है। मुझे तो कहते तनिक भी संकोच नहीं कि इसके निर्माणपर गोम्मटेश्वर महाराजकी प्रतिमाका असर स्पष्ट है। मुख और शारीरिक रचनासे एवं हस्तोंपर बिखरी हुई लताएँ भी इसकी पुष्टि करती हैं। रचनाकाल १२ शती होगा।

५—यह प्रतिमा खडगासनस्थ है। मोटी आकृति है। काल १३ शती है।

इस प्रकार पाँचों खडगासनस्थ दिगम्बर मूर्तियाँ हैं।

इस प्रकार पाँच चित्र प्रतिमाओंके मेरे सम्मुख आये, जैसा मुझपर प्रभाव पड़ा और समझा वह आपके सामने है। छठवाँ चित्र एक ताम्र पत्रका था, फोटू इतना रद्दी और अस्पष्ट था कि उनको ठीकसे पढ़ना असम्भव था। कार्डसाइजमें ३४ पंक्तियोंकी कृतिको कैसे पढ़ा जासकता था, परन्तु इतना अवश्य प्रतीत हुआ कि समय १२३० आषाढ़ कृष्णा अमावस्याका है। चन्द्रदेव नृप, गोबिन्दचन्द, मदनपाल और नृपचन्ददेवके नाम पढ़े गये। उपर्युक्त सभी सामग्री विक्रयार्थ ही किसीके संग्रहमें रखी है। नामका मुझे स्वयं पता नहीं। सुना है ९०० रुपये मूल्य है। ताम्रपत्र अलग ६०० रुपये¹।

मेरे ही सदृश और भी पुरातत्त्वप्रेमियोंको ऐसे अनुपलब्ध प्रतिमाओं तथा संस्कृतिकी सभी शाखाओंसे सम्बन्ध रखनेवाले अवशेष या चित्र दृष्टिमें आते ही होंगे। मेरा उनसे अनुरोध है कि वे इस प्रकारके नोट्स ही—यदि होसके तो चित्र भी—'अनेकान्त'में प्रकाशनार्थ अवश्य ही भेजकर सांस्कृतिक उत्थानमें सहयोग दें। वरना सामग्री यों ही संसारसे विदा हो जायगी। यद्यपि इस प्रकारके शाब्दिक चित्रोंसे कलाकारोंको उसके रहस्योंका सूक्ष्म परिज्ञान भले ही न हो पर पुरातत्त्वके मुझ जैसे सामान्य व्यक्तियोंको अग्रिम अध्ययनमें बड़ी सहायता मिलती है। यों तो बिहार प्रान्तके खण्डहरोंमें और पटना म्यूज़ियममें भी अनेकों सुन्दर कलापूर्ण जैन प्रतिमाएँ पाई जाती हैं जिनका विस्तृत सचित्र परिचय मैं "बिहारकी तीर्थ भूमिमें" शीर्षक निबन्धमें दूंगा।

पटना सिटी, ता० २७–७–४८

१ जैन समाजका एक भी सार्वजनिक पुरातत्वविषयक संग्रहालय नहीं है। यह अफसोसकी बात है। वरना ऐसी सामग्रियाँ भटकती न फिरतीं। परन्तु अब ४-५ लाख रुपयेका चन्दा करके क्यों न इस ओर कदम बढ़ाया जाता, थोड़ा-थोड़ा संग्रह भी आगे विशाल संग्रहका रूप धारण कर लेता है। 'भारतीयज्ञानपीठ' के कार्यकर्ताओंका ध्यान मैं इन पंक्तियों द्वारा आकृष्ट करना चाहता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'संजद' शब्दपर इतनी आपत्ति क्यों ?

(लेखक—श्री नेमचन्द बालचन्द गांधी, वकील)

प्रो० हीरालालजीने कोई ७ वर्ष पूर्व षट्खंडागम-के प्रथम भाग जीवट्ठाणकी प्रथम पुस्तक प्रसिद्ध की थी। इसके ३३२वें पृष्ठपर ९३वाँ सूत्र छपा है, जो नीचे उद्धृत किया जाता है—

"सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजमसम्माइट्ठि-संजादासंजद¹-ट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥९३॥

इस सूत्रपर सम्पादकों द्वारा दीगई '१ अत्र "संजद" इति पाठशेषः प्रतिभाति' इस टिप्पणीको देखते ही दिगम्बर जैन समाजमें एक धूम मच गई। उसका यह खयाल हुआ कि प्रोफेसर साहबका इस सूत्रमें "संजद" शब्दको बढ़ानेमें कुछ हेतु है। क्योंकि इस शब्दके बढ़ानेसे दिगम्बर आम्नायके विरुद्ध द्रव्यस्त्रीको मुक्ति प्राप्त होना सिद्ध होगा। इस भयके कारण पं० मक्खनलालजी शास्त्री मोरेना और पं० रामप्रसादजी शास्त्री बम्बईने लेख और ट्रैक्ट लिखे और 'संजद' शब्दको हटानेकी प्रेरणा की। यह धूम सिर्फ समाज तक ही महदूद (सीमित) नहीं रही, किन्तु परमपूज्य आचार्य श्री १०८ शांतिसागर महाराजजी तक पहुँचा दी गई। और उनको यह सुझाया गया कि अगर सूत्रमें यह 'संजद' शब्द बढ़ाया जाय तो बड़ा अनर्थ होगा, और श्वेताम्बर आम्नाय-सम्मत स्त्री-मुक्तिकी पुष्टि होकर दिगम्बराम्नाय नेस्तनाबूद हो जायगा।

पं० मक्खनलालजीने जो ट्रैक्ट लिखा वह १७० पेजोंका है। उसका नाम है—"सिद्धांतसूत्रसमन्वय" इसे आपने बड़ी भक्तिसे श्रीशांतिसागरजी महाराजके करकमलोंमें समर्पित किया है।

प्रो० हीरालालजीने "संजद" पदकी आवश्यकता को अपनी टिप्पणीमें दिखाकर एक प्रकारसे प्रशस्त कार्य ही किया। लेकिन उसके बाद समाजकी ओरसे उसपर टीका होनेपर भी उसका जब मूलप्रतिसे मुक़ाबिला कराया गया और मूलप्रतिमें संजद' शब्द का होना निर्णीत होगया तब वस्तुस्थितिसे सब परिचित होगये। इतना होनेपर भी श्री पं. मक्खनलालजी शास्त्री प० पू० आचार्य महाराजजीसे निवेदन करते हैं कि "ताम्रपत्र निर्मापक कमेटीको आदेश देकर 'संजद' पद जिस ताम्रपत्रपर खुदा हो उसको अलग करा देवें।"

मूल ताडपत्रकी प्रतिमें 'संजद' पद है और उसी के अनुसार ताम्रपत्रपर भी खोदा गया है। ऐसी हालतमें उस ताम्रपत्रको ही अलग करा देनेका अनुरोध कुछ समझमें नहीं आता। ग़नीमत है कि मूल ताडपत्रके अलग करा देनेका अनुरोध नहीं किया गया।

सिद्धान्तसूत्रसमन्वयके खण्डनपर विद्वद्वर पं० पन्नालालजी सोनी न्यायसिद्धान्त-शास्त्रीने "षट्-खण्डागम रहस्योद्घाटन" नामकी एक पुस्तिका २३२ पेजकी लिखकर प्रकाशित की है, जिसमें बहुत ही स्पष्टतासे यह साधार सिद्ध किया है कि सूत्र ९२-९३ का सम्बन्ध भावस्त्रीसे है, न कि द्रव्यस्त्रीसे। जो जीव द्रव्यपुरुष होकर भावस्त्री हो उसके चौदह गुणस्थान हो सकते हैं और जो जीव द्रव्यस्त्री हो वह पाँचवे गुणस्थानके आगे नहीं जासकता।

इसलिये सूत्र ९३में स्थित "संजद" पद किसी प्रकार द्रव्यस्त्रीकी मुक्ति नहीं सिद्ध कर सकता। अतएव उसे दूर करनेका आग्रह निष्प्रयोजन है। प्रत्युत उस पदके दूर होजानेपर ही दिगम्बर आम्नाय तथा षट्खण्डागममें विसङ्गति आदि अनेक दोष खड़े होजाते हैं, जोकि अनर्थकारी ही सिद्ध होते हैं।

ये सब बातें पण्डितप्रवर सोनीजीने अपने ट्रैक्टमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इतनी विशद रीतिसे स्पष्ट की हैं कि उस विषयमें और कुछ लिखना पिष्टपेषण करना होगा।

पं० मक्खनलालजीने अपने "सिद्धान्तसूत्रसमन्वय" ट्रैक्टमें "निर्णय देनेके आचार्य महाराज ही अधिकारी हैं" इस शीर्षकका एक प्रकरण लिखकर यह सिद्ध करना चाहा है कि 'संजद' पदका विवाद सिद्धान्तशास्त्र-सम्बन्धी है। अतः इसके निर्णयका अधिकार प० पू० चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ शांतिसागरजी महाराजको ही है। कारण कि वे वर्तमानके समस्त साधुगण एवं आचार्य-पदधारियोंमें सर्वोपरि शिरोमणि हैं। इत्यादि।

लेकिन सुना जाता है कि प० पू० आचार्यश्रीने फर्माया है कि इसका निर्णय हम नहीं कर सकते। यह काम पंडित लोगोंका है। संस्कृत और प्राकृत भाषाके जानकार पंडित लोग ही होते हैं। अतः वे ही लोग इसका निर्णय करलें।

मातृप्रतिसे मिलान करनेके बाद 'संजद' पदको ताम्रपत्रसे निकलवा देनेका पू० आचार्यजीसे अनुरोध करना व्यर्थ ही नहीं किन्तु अनर्थकारक होगा। मातृप्रतिके विरोधी ताम्रपत्रको कोई भी पसन्द नहीं करेगा। मैं तो पं० मक्खनलालजीसे सविनय अनुरोध करता हूँ कि अब आप एक पत्रक निकालकर यह प्रकट कर दीजिये कि "सिद्धान्तसूत्रसमन्वयमें हमने जो विचार प्रकट किये हैं वे 'षट्खण्डागम रहस्योद्घाटन' को विचारपूर्वक पढ़नेके बाद अब कायम नहीं रहे हैं। ९३वाँ सूत्र वस्तुतः भावस्त्रीसे सम्बन्ध रखता है, द्रव्यस्त्रीसे नहीं।"

प्रो० हीरालालजीसे भी सविनय विनती है कि भगवान् श्रीकुन्दकुन्दाचार्य, श्रीसमन्तभद्राचार्य, श्री पूज्यपाद, भट्टाकलङ्कदेव, वीरसेनाचार्य, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती आदिकोंको क्या आप आधुनिक आचार्य अतएव अप्रमाण समझते हैं। षट्खण्डागम की प्रस्तावनामें तो इन आचार्यप्रवरोंकी स्तुति करके आपने उनके ग्रन्थों और वचनोंको प्रमाण माना है। और अब भाववेद और द्रव्यवेदकी व्यवस्थाके विषयमें उनके वचनोंको प्रमाण माननेको आप तय्यार नहीं हैं, यह क्यों ?

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे।
णामोदयेण दव्वे पायेण समा कहिं विसमा॥

गोम्मटसार-जीवकाण्डकी इस गाथासे वेद-वैषम्य स्पष्टतया सिद्ध होनेपर भी उसे न मानना अनुचित है।

गोम्मटसारग्रन्थ श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती जीकी अनुपम कृति है, जो षट्खण्डागमग्रन्थराजका पूर्णमन्थन करके ही उसके साररूपमें तय्यार की गई है। नेमिचन्द्राचार्यने भी इस बातको गोम्मटसार-कर्मकाण्ड गाथा ३९७में बड़े गौरवसे कहा है—

"जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं॥"

"जिस प्रकार चक्रवर्ती अपने चक्रके द्वारा षट्खण्ड पृथ्वीको सिद्ध कर लेता है। उसी प्रकार मतिरूपी चक्रके द्वारा मैंने छह खण्ड अर्थात् षट्खंडागम को सम्यक्रूपसे साध लिया है।"

श्रीनेमिचन्द्राचार्यको "सिद्धान्तचक्रवर्ती" यह उपाधि भी इसी हेतुसे प्राप्त हुई, जो उनके सिद्धान्त-विषयक पारगामित्वकी द्योतक है। अतएव उनके गोम्मटसारादि ग्रन्थोंके प्रति अविश्वास प्रकट करना उचित नहीं है।

प० पू० आचार्य श्री शान्तिसागर महाराजजीके चरणोंमें भी सविनय विनती है कि मातृप्रतिमें 'संजद' पदका होना सिद्ध हो चुका है और उक्त सूत्रमें उसका स्थिर रहना टीकादिपरसे सङ्गत और आवश्यक है। तथा विद्वत्परिषद्ने भी अपना यही निर्णय दिया है तो अब उस ताम्रपत्रको बदल देने या उसपर कुछ टिप्पणी देनेका आग्रह अथवा प्रयत्न अनुचित ही होगा।

पं० मक्खनलालजीने जो यह लिखा है कि ९३वें सूत्रमें 'संजद' पदको कायम रखनेसे द्रव्यस्त्रीको मुक्ति सिद्ध होगी सो बिलकुल गलत है। पं० सोनीजीने इस आक्षेपका शास्त्राधार पूर्वक अच्छी तरहसे खंडन किया है। अतएव यह भ्रम दूर होजाना चाहिये। पं० मक्खनलालजी विद्वान् हैं और इस लिये उन्हें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपहरणकी आगमें झुलसी नारियाँ

रावण और कंसकी कथाएँ जब हमने पढ़ीं, तो हमारा मन सिहर उठा—ओह, ऐसे अत्याचारी थे ये दुष्ट ! पर आज हमारे चारों ओर जो कुछ होरहा है, उसे देखकर रावण और कंस दोनों झेंप गये हैं। मार-काट और फूँक-फाँक तो आम बातें हैं, पर सबसे मर्मबेधी है हमारी बहू-बेटियोंका बलपूर्वक अपहरण। आज जाने कितनी हज़ार नारियाँ इन रावणोंके पंजेमें हैं। लज्जाकी बात है कि हम उन्हें बचा न सके और दुःख है कि जो बच रहीं, हम उन्हें सच्चा पथ भी न बता सके। अङ्गारोंसे लिखा यह प्रश्न है कि जो स्त्रियाँ बलपूर्वक अपहृत होगईं या होजायें, क्या वे इसे 'कर्मोंका फल' मानकर चुपचाप उन्हीं राक्षसोंके पंजेमें फँसी रहें या उनके लिये भी कोई मार्ग है ?

हमारे नेता नारियोंको सीताका आदर्श उपस्थित करनेको कहते हैं। हमारी मूढ बुद्धिमें नहीं आया कि वह कौनसा आदर्श था, जो सीताने उपस्थित किया और जिसपर आजकी देवियाँ कार्य नहीं कर रही हैं। हमारी तुच्छ सम्मतिमें तो हिन्दू स्त्रियाँ सदैवसे भगवती सीताके पथपर चल रहीं हैं। बनोंमें जब पति ही नहीं जाते तब पत्नियाँ उनके साथ कैसे जायें ? हाँ जेलों, सभाओं, मेलों, सिनेमाओं, थियेटरों, नाचघरों और क्लबोंमें वे पतिसे कन्धा भिड़ाये रहती ही हैं। पति कितनी ही दूर हो, बूढ़े सास-ससुरको छोड़ कर उसीके पास रहती हैं। पति-वियोग एक पलको वे पाप समझती हैं। जैसे सीता चुपचाप गर्दन लटकाये सुबकती हुई रावणके द्वारा हरण कर ली गई, उसी प्रकार आज भी हिन्दू नारियाँ आततायियोंके साथ मिमयाती हुई चली जाती हैं और वे उनके अत्याचारोंको बिलखती हुई, कराहती हुई सहन करती हैं। हाँ, यदि सीताने अहिंसात्मक सत्याग्रह (?) का अवलम्बन न लेकर रावणद्वारा हरण किये जानेपर छीना-झपटीमें देर लगाई होती, अंगुलियोंसे आँखें कुचा दी होतीं, दाँतोंसे नाक कुतर ली होती या लङ्कामें जाकर उसे धोखेमें फँसाकर सोते हुए बध कर दिया होता, या महलोंमें आग लगा दी होती, तो बादमें होने वाली ये नारियाँ भी इसी आदर्शका अनुकरण करतीं। कितने खेदकी बात है कि जिन नारियोंका बलात् हरण हो, उन्हीं नारियोंकी सन्तान विधर्मी होकर अपनी माताओंके अपमानका बदला न लेकर दुष्टों और आततायियोंको अपना पूर्वज समझकर उल्टा हिन्दू जातिके रक्तकी प्यासी बनी रहती है।

हिन्दुओंमें यह बड़ी आत्म-घातक प्रथा रही है कि बलात् हरण करने वाले आदरकी दृष्टिसे देखे गये हैं और स्त्रियोंने बिना हील-हुज्जत किये उन्हें पति स्वीकार कर लिया है। हम तो कहते हैं कि यह प्रथा ही हिन्दू जातिके लिये घातक है। हिन्दू जातिका यदि यह सिद्धान्त हुआ होता कि हरण करनेवाला या बलात्कार करनेवाला महान्से महान् व्यक्ति क्यों न हो, अपहृता या दूषित की गई नारीद्वारा बध होना ही चाहिये और यदि यह मार्ग सीता या अन्य पतिव्रता नारियोंने बना दिया होता तो आज किसी भी आततायीको यह साहस न होता कि वह एक भी नारीका अपहरण करे। अस्तु ! 'बीती ताहि बिसार दे, आगेकी सुधि लेय', अब भी क्या बिगड़ा है ? हमारे नेता व्याख्यानदाता, कथावाचक आज भी घर-घरमें संदेश पहुंचा सकते हैं—आततायी यदि तुम्हें बलात् भ्रष्ट करते हैं या घर लेजाते हैं तो अवसर पाकर बदला लो। खानेमें विष मिलाकर उनके परिवारको नष्ट

एकबार जो मत दिया उसको बदलना नागवार और अपमानास्पद मालूम होता होगा। पर अपने पहले मतमें प्रमादसे हुई कोई गलती या दोष पीछे मालूम होजाय तो उसको मान्य करना सम्मान्योंका काम है—उसमें उनकी प्रतिष्ठा और गौरव है। और अपमान समझना दुराग्रह या दुरभिनिवेशका द्योतक है।

यह सिद्ध हो जानेके बाद कि 'संजद' पद मूलप्रतिमें विद्यमान है और ताम्रपत्रपर भी वह खोदा गया है। फिर भी ताम्रपत्रसे उसको निकाल देनेका अनुरोध और आग्रह प० पू० आचार्यजीसे हो रहा है, इसीलिये यह लेख प्रसिद्ध करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर दो, घरमें आग लगाकर उनका सर्वस्व भस्मीभूत कर डालो। भले ही इसके लिए महीना दो महीना या वर्ष दो वर्ष भी प्रतीक्षा करनी पड़े, पर अपहरण के अपमानको न भूलो। अवसरकी हर घड़ी ताकमें रहो और अवसर मिलते ही बदला लो। हिन्दू समाज के नेता नारियोंको बदलेका यह मन्त्र देकर ही चुप न हो जायें, अपनेको कर्तव्य-मुक्त न मान लें। वे यह भी ध्यानमें रक्खें कि यदि कोई नारी ऐसा करके लौटती है, तो उसे यही नहीं कि घरमें अपना स्थान मिले अपितु समाजमें सार्वजनिक रूपसे उस वीर-नारीको अभिनन्दन भी मिले। हमारे समाजमें ऐसे २-४ भी अभिनन्दनोत्सव हो जायें तो वे अपहरणोंको असम्भव बना दें। तब विरोधियोंके लिए हमारी बहू-बेटियाँ गुड़की डली न रहेंगी, फास्फोरसकी टिकिया हो जायेंगी, जो हवा लगते ही जल उठती है और जला डालती है। गाँधीजीने लिखा था—

"अगर मरनेका सीधा रास्ता ज़हर ही हो तो मैं कहूँगा कि बेइज्जती करानेके बनिस्बत ज़हर खाकर मर जाना बेहतर है।·········जिन्हें खञ्जर रखना है वे भले ही खञ्जर रक्खें लेकिन खञ्जरसे एक-दोका सामना किया जा सकता है सैकड़ोंका नहीं। खञ्जर तो कमज़ोरीका निशान है। आखिरकार जानपर खेल जानेकी तैयारी ही हर हालतमें औरतोंकी इज्जत बचा सकती है और कुछ न कर सकें तो वे अपनी जेबमें ज़हर ही रक्खें, ज़हर खाकर मरना नैतिक-पतनसे कहीं अच्छा है।"

महात्माजीका यह उपाय निःसन्देह अमोघ है और यह उत्सर्गकी उस भावनाका प्रतीक है जो अभी पिछले महायुद्धमें रूसके देशभक्त निवासियोंने बरती। वे जर्मनोंसे लड़े, जब उनके लिए जमे रहना असम्भव हो गया तो वे पीछे हटे, पर उस स्थानका कण-कण फूँककर पीछे हटे। इस प्रकार जर्मनोंको केवल जले हुए खण्डहर ही मिले।

हम इस भावनाका अभिनन्दन करते हैं, पर जड़ सम्पत्ति और जीवित सम्पत्तिमें कुछ भेद दिखाई देता है। जड़ पदार्थ जब शत्रुके हाथमें गया, तो फिर बस गया ही गया। पर जीवन, शत्रुके हाथोंमें पड़नेपर भी उबर सकता है। यह भी निश्चित है कि जीवित स्त्रीको शत्रु या आततायी अपहरण कर ले जा सकता है और आजकी भाषामें उसका दुरुपयोग भी हो सकता है, पर इस दुरुपयोगको, उस नारीकी भ्रष्टता या नैतिक पतन माननेको, हम कदापि तैयार नहीं हैं। आततायीका शरीरपर अधिकार कर लेना नैतिक पतन नहीं होता है। ऐसा होता, तो जेलमें बन्द स्वयं श्रद्धेय महात्माजी, पं० जवाहरलाल नेहरू और मौलाना अबुलकलाम आज़ाद नैतिक दृष्टिसे पतित माने जाते। हमारी रायमें नैतिक पतन है आततायीके सामने झुक जाना, उसे अपनी आत्मा सौंप देना, उसका हो जाना, उसे (विवशतामें ही सही) अपना मान लेना और उस अपमानकोभूल जाना।

आज हमें नारीको यह बताना है कि अपहरण मोर्चेका अन्तिम अध्याय नहीं है। अपहृत होकर भी नारी अपनी लड़ाई जारी रख सकती है और उसे जारी रखनी चाहिये। आज हम नारीको जो सबसे बड़ा अस्त्र दे सकते हैं वह यही भावना है कि—

आक्रमणके समय उसे लड़ना है और अपहरण-से बचना है। पर यदि अपहरण हो ही जाये, तो उसे अपना युद्ध जारी रखना है, हार नहीं माननी है, थकना नहीं है, समयकी प्रतीक्षा करनी है और निश्चितरूपसे उसे एक दिन अपने घर लौटना है। लौटना भी है, तो लुटेरोंको लूटका दण्ड देकर और पीढ़ियों तक स्मरण रखने योग्य एक चुभता-सा पाठ पढ़ा कर।

यह धोखा नहीं है, विश्वासघात नहीं है, नैतिक पतन नहीं है, यह शास्त्रोंमें वर्णित और प्रमाणित आपद्धर्म है, युद्धकी एक नीति है, रणका एक दाव है और निश्चय ही यह नारीका पवित्र गुरीला युद्ध है। जहाँ खुला युद्ध सम्भव नहीं होता, वहाँ यह गुरीला युद्ध लड़ा जाता है और भारतकी नारीको आज इसी गुरीला युद्धकी शिक्षा लेनी है।

इस युद्धमें उसे टैङ्क, मैशीनगन, राइफिल, बन्दूक और तलवार नहीं मिलें, तो कोई चिन्ता नहीं। शाक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बनारनेका दराँत, सब्जी काटनेका चाकू, आग ठीक करनेका चिमटा, पतीली उतारनेकी सिण्डासी, तेज़ किनारेकी थाली या कटोरी, तेलसे भरी लालटैन और छतपरसे धक्का देनेको सधी हथेलियाँ उससे कौन छीन सकेगा ? यदि उसमें भावना हो तो उसके ये अस्त्र अग्निवाण सिद्ध होंगे और देशके इतिहास-लेखक आनेवाले दिनोंमें इन अस्त्रोंके प्रयोगकी कला-का ऐसा गुणगान करेंगे कि सेनापति-रोमेल और मैकार्थरकी आत्माएँ ईर्ष्यासे उसे सुनेंगी । गाँधीजीने लिखा था—

> "भगाई गई लड़कियाँ बेगुनाह हैं । किसीको उनसे नफ़रत न करनी चाहिये । हर सही विचारनेवाले आदमीको उनपर तरस आना चाहिये और उनकी पूरी मदद करनी चाहिये । ऐसी लड़कियोंको अपने घरोंमें खुशी-खुशी और प्यारसे लौटा लेना चाहिये और उनके लायक लड़कोंसे उनकी शादी होनेमें कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये ।"

दिक्कत तो नहीं होनी चाहिये थी, किन्तु ऐसा कठिनाइयाँ हिन्दू नारियोंके उद्धारमें बाधक अवश्य रही हैं । हम सनातन पन्थियोंको एक सनातन भूल खाये जा रही है । रावणका वध होजानेपर सीता रामके शिविरमें आईं । सीता सोचती थीं—राम मुझे देखकर विह्वल हो उठेंगे, वे मुझे हृदयसे लगानेको दौड़ेंगे और मैं चटसे उनके चरणोंमें गिर जाऊँगी, उठायेंगे तो भी न उठूँगी और रोकर भीख माँगूँगी कि नाथ, अब यह चरण-सेवा पलभरको भी न छूटने पावे । किन्तु सीताकी यह आशा हवामें तैर गई । रामने सीताकी ओर देखा भी नहीं । गुप्तरूपसे हनुमानसे सीताके पवित्र बने रहनेकी बात पाकर भी उनका हृदय अविश्वासी हो उठा ।

कहा जाता है कि वे सीताके सतीत्वकी ओरसे निश्चित थे, किन्तु लोक-लाजके लिए अग्नि-परीक्षा आवश्यक थी । हम कहते हैं यही सबसे बड़ी भूल रामने की थी । रावणके यहाँसे असती लौटनेपर भी सीताका कोई अपराध नहीं बनता । बलवान आततायियोंके आगे शारीरिक सतीत्व रह ही नहीं सकता फिर सतीत्व तो आत्माकी वस्तु है, उसका कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता । अपवित्र पुद्गलको कोई दुष्ट बलात् अपवित्र करता है, तो इससे सतीका क्या बिगड़ता है ? सीताका सहर्ष स्वागत करके यदि राम यह परिपाटी डाल जाते कि हरण की हुई स्त्रियाँ हर दशामें पवित्र हैं और उन्होंने यदि सीताकी आलोचना करने वाले नीच धोबीकी यह कहकर जिह्वा काट ली होती कि जो निरपराध नारीको दोष लगाता है, उसको यही दण्ड मिलता है, तो आज स्त्रियोंकी जो यह दुरवस्था है, न हुई होती ।

आज तो स्थिति यह है कि हमारी जो बहन-बेटी गई, सो गई; क्योंकि यदि उसे लौटनेका अवसर मिलता भी है और वह आना भी चाहती है, तो वह सोचती है कि जहाँ मैं जारही हूँ वहाँ मेरे लिये स्थान कहाँ है ? जूतेमें परसी रोटियाँ मिलेंगी और चारों ओर घृणा भरी आँखोंकी छाया । ऐसे अवसरोंपर पुरुष तो हैं ही, पर स्त्रियाँ भी अपनी उस बहनको सम्मान या प्यार नहीं दे पातीं । उनके व्यङ्गवाण तो उस समय इतने पैने होजाते हैं कि वे कलेजेको बींधनेमें चूकते ही नहीं ।

अपहृत होजानेपर भी आज नारीको जहाँ यह सीखना है कि वह हताश न हो और अपना गुरीला युद्ध जारी रक्खे, वहाँ हमें भी तो अपनी मनोवृत्तिमें परिवर्तन करना है । यह परिवर्तन ही तो उस योद्धा नारीका असली बल है । प्यार और मानकी दुनिया उजाड़कर ठोकरोंके संसारमें कौन आना चाहेगा ? जो काम रामने नहीं किया, वह आजके समाजको करना है, उसे जीना है तो यह करना ही होगा । अपहरणसे लौटी हुई स्त्रियोंको भरपूर सम्मान मिलना चाहिये । उन्हें उनका स्थान मिलना चाहिये । उनके लिये सम्मान और स्थानकी गारण्टी करके ही हम इस युद्धमें विजय पा सकते हैं[१] । —गोयलीय

---

१ यह लेख मेरी एक लेखमालाका अंश है जो सन् ४७के 'नया जीवन'में प्रकाशित हुआ था तथा 'महारथी' 'सरिता' आदि कई पत्रोंने जिसे उद्धृत किया था ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दृष्टिका आत्म-सम्बोधन

(लेखक—श्रीजिनेश्वरप्रसाद जैन)

हे वीर आत्मन् !

तू कितना धीर कितना शक्तिशाली और अखंड ज्ञानचिद्रूप चिन्मूर्तिस्वरूप अनन्त-लक्ष्मीका धनी है और कहां तेरी इस हाड-मांसके अस्थिर गलनरूप शरीरमें मोह-ममकार-बुद्धि ! तेरी इस दशापर खेद होता है कि तू मोहमें कितना अन्ध होरहा है। सब कुछ जानते हुए भी कुछ नहीं जानता, सब कुछ देखते हुए भी कुछ नहीं देखता। अरे ! अब तो चेत और इस मोहकी श्रृँखलाको तोड़। इस मोहके फन्देमें पड़े-पड़े ही तूने कितना कल्पकाल बिता दिया। कितनी शताब्दियाँ तूने संसारमें जन्मते और मरते बिता दीं। कितनी माताओंका दुग्धपान आज तक तूने किया और कितनी माताओंको तूने आज तक अपने वियोगमें रुलाया और कितनी पर्यायोंमें तूने जीवन बिताया तथा आज तक कितने संकल्पों और विकल्पोंमें फंसकर स्वको भूलकर—निजकी सुध-बुधको खोकर गडरियेकी भेड़ोंकी तरह हँकता रहा !

अरे महान् पुरुषार्थी !

अब पुरुषार्थ कर। पुरुष बन। जागरूप होकर जाग। चेतनस्वरूप होकर चेत और समझपूर्वक समझ। अपने निजकुटुम्बमें मिलनेका प्रयास कर। तुझे अवश्य सफलता प्राप्त होगी। वह सफलता बाहर नहीं तेरेमें ही है। मृगकस्तूरीकी तरह बाहर मत खोज। अन्दर निरख। शान्त हो। भववासना और पापवासनाओंका अन्त कर। शान्तचित्त और निराकुल दशा तेरा स्वरूप है उसे पहचान। अपनी मस्तीमें मस्त हो जा। खुदमें समा जा। 'दासोऽहं'का विकल्प काटकर 'सोऽहं'से भी आगे बढ़ कर 'अहं'में गोता लगा। तब ही तू निजमें निजरूप होकर ठहरेगा।

संसारमें भटकते हुए किसी जीवको जब कभी कदाचित्–किसी सत् समागम या गुरुकी मुखारविन्दवाणीसे आत्म-ज्योतिकी झलक आजाती है तब वह जीव आध्यात्मिक कहे, विवेकबुद्धिवाला कहो अथवा स्वरूपमें तल्लीन कहो या सम्यग्दृष्टि कहो आदि अनेक नामोंसे पुकारा जाता है।

जब यह जीव सम्यक्दर्शनसे विभूषित होता है तब इसकी दशा ही कुछ अपूर्व होजाती है। इसकी समस्त क्रियायें, इसकी समस्त भावनायें ही कुछ अजीब (अद्भुत) होजाती हैं। यह बहिरंगमें सब कुछ करते हुए भी अन्तरगमें किसीका स्वामित्व नहीं रखता। वह भोजन करता है परन्तु किसीको भी कष्ट न देकर। वह स्त्री-पुत्रादिके मध्यमें रहता है, उनसे स्नेह करता है, उनका सर्व प्रबन्ध एवं सर्व कार्य, करता है फिर भी उसकी मोहबुद्धि नहीं होती, वह अन्तरङ्गमें ज्ञाता-दृष्टा रहता है। शरीरको शरीर, पर पदार्थोंको पर और अपनेचिन्मात्र चेतनको उससे भिन्न तथा निज अनुभव करता है। वह संसारके समस्त कार्योंको करता है परन्तु निजउपयोगका ध्यान नहीं छोड़ता। उसका जीवन, उसका व्यवहार, उसकी कार्यकुशलता, उसका सांसारिक प्रेमकुछ विलक्षण ही है। वह खाते हुए भी नहीं खाता, शयन करते हुए भी शयन नहीं करता और विषय भोगते हुए भी विषय नहीं भोगता। वह तो प्रतिसमय आत्मतत्पर—सावधान रहता है। ऐसे ही जीवका आत्मीय कल्याण होता है, क्योंकि जो भी कार्य वह करता है उसका वह स्वामी नहीं बनता; क्योंकि जब भेद-विज्ञानका रसिक होगया, परसे निजको भिन्न जान लिया, फिर वह अन्य पदार्थोंका कर्ता या स्वामी कैसे होसकता है ? जैसे पत्ता जब तक हरा रहता तभी तक वह रस खींचता है—सूख जानेपर रस नहीं खींचता। इसी तरह वह जब तक अन्य कार्योंमें रचता है तभी तक बँधता है। स्वमें रचनेपर नहीं बँधता है।

उसका उपयोग अत्यन्त निर्मल है। हर समय जेलके बन्दीकी तरह विचारता रहता है कि कब मेरा यहाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से छुटकारा होगा। जैसे जेलका बन्दी जेलमें समस्त कार्य करता है, अपनी कोठरीको साफ भी करता है और भी अन्य कार्य करता है परन्तु उनमें रचता नहीं। हर समय छूटना ही चाहता है। उसी तरह वह सम्यग्दृष्टि जीव भी संसारमें रहते हुये भी समस्त कार्योंके करते हुए भी अपनी दृष्टि अपनी निज सम्पत्तिकी ओर लगाये हुए रहता है। वह प्रतिसमय जैसे समस्त मसालों सहित भोजन करते हुए भी नोन-

(पृष्ठ २९० का शेषांश)

होना उसी प्रकार विरुद्ध पड़ता है जिस प्रकार कि एक परमाणुका युगपत् सर्वगत होना विरुद्ध है, और इससे उक्त हेतु (साधन) असिद्ध है तथा असिद्ध हेतुके कारण कृत्स्नविकल्परूप (निरंश) सामान्यका सर्वगत होना प्रमाणसिद्ध नहीं ठहरता।

'(यदि यह कहा जाय कि सत्तारूप महासामान्य तो पूरा सर्वगत सिद्ध ही है, क्योंकि वह सर्वत्र सत्प्रत्ययका हेतु है. तो यह ठीक नहीं है; कारण ?) जो अनन्त व्यक्तियोंके समाश्रयरूप है उस एक (सत्ता-महासामान्य)के ग्राहक प्रमाणका अभाव है—क्योंकि अनन्त सद्व्यक्तियोंके ग्रहण विना उसके विषयमें युगपत् सत् इस ज्ञानकी उत्पत्ति असर्वज्ञों(छद्मस्थों)-के नहीं बन सकती, जिससे सर्वत्र सत्प्रत्ययहेतुत्वकी सिद्धि हो सके। सर्वत्र सत्प्रत्ययहेतुत्वकी सिद्धि नहोनेपर अनन्त समाश्रयी सामान्यका उक्त अनुमान प्रमाण नहीं हो सकता। और इसलिये यह सिद्ध हुआ कि कृत्स्न-विकल्पी सामान्यकी द्रव्यादिकोंमें वृत्ति सामान्यबहुत्व-का प्रसङ्ग उपस्थित होनेके कारण नहीं बन सकती। यदि सामान्यकी अनन्त स्वाश्रयोंमें देशतः युगपत् वृत्ति मानी जाय तो वह भी इसीसे दूषित होजाता है; क्योंकि उसका ग्राहक भी कोई प्रमाण नहीं है। साथ ही सामान्यके सप्रदेशत्वका प्रसङ्ग आता है, जिसे अपने उस सिद्धान्तका विरोध होनेसे जिसमें सामान्यको निरंश माना गया है, स्वीकार नहीं किया जासकता। और इसलिये अमेयरूप एक सामान्य किसी भी प्रमाणसे सिद्ध न होनेके कारण अप्रमेय ही है—अप्रामाणिक है।'

की कुछ न्यूनता होनेपर दृष्टि नोनपर ही जाती है उसी तरहसे सब कुछ करते हुए भी अपने निज आत्मतेज-पुञ्जपर ही उपयुक्त रहता है। जैसे कि मिहं होती है उसे कूटने-छेतनेपर भी वह अपनी हरियाईको नहीं तजती, परन्तु रचनेपर हरियाईको तजकर लाल हो जाती है उसी तरहसे यह आत्मविभोर प्राणी अपनी निजघटरूपी लालोमें ही तल्लीन रहता है। यद्यपि बाहरकी हरियाईमें भी वह रहता है परन्तु निजकी लाली इसके घटमें प्रकट होचुकी है इसलिये इसका उपयोग किसी समय भी स्वरूपसे भिन्न नहीं होता।

प्रातःस्मरणीय परमपूज्य आचार्य श्रीकुन्दकुन्द भगवानने श्रीसमयसारमें कहा है कि सम्यग्दृष्टि निरबन्ध होता है सोई ठीक है।

अरे भैय्या! जिसका अनन्त संसारका बन्ध कट गया क्या वह बन्धवाला कहलायेगा ? जिसके सिर परसे अनन्त भार उतर गया–सिर्फ तिल बराबर भार रह गया वह क्या भारवाला कहलायेगा? अरे! जिसके मोहके जहरकी लहर उतर गई वह कहाँका मोही? जिसने भव-वासना और पाप-वासनाओंका अन्त कर दिया उससे ज्यादा सुखिया कौन? इससे जाना जाता है कि वही सम्यग्दृष्टि है, वही समस्त जीवोंको समान देखनेवाला है, वही परमक्षमावान् है, अत्यन्त दयालु है, कृपावान् है, ज्ञानी है, खुद जीता है और दूसरोंको जीने देता है, जिसने मोह-मद-मानादिको चकना-चूर कर दिया है। जो सदैव अलिप्ती रहता है वही जीव धर्मी है, सदा संतोषी है, जीतलोभ। है। जो समस्त बन्धुओंको बन्धनरहित देखना चाहता है और सदा जागरूप है। निज आत्माका दृढ विश्वासी है, शान्तचित्त है, मौनी है। जो वृथाकी कलहमें नहीं पड़ता वही सच्चा सुखिया आत्मार्थी आत्म-हितैषी, आत्मयोगी, परमसंयमी, जितेन्द्री और जिनेश्वरका लघु नन्दन है; क्योंकि उसके ज्ञान-ज्योतिका उदय होगया है। वह दुतियाका चन्द्रमा है।

हे आत्मन्! अगर तुम संसारके आवागमनसे छूटना चाहते हो तो सच्चे सम्यग्दृष्टि बननेकी कोशिश करो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतिशयक्षेत्र श्रीकुण्डलपुरजी

(लेखक—श्रीरूपचन्द बजाज)

जी० आई० पी० रेलवेके बीना और कटनी जंकशनके मध्य, दमोह स्टेशनसे २४ मील दूर, पटेरा रोडपर कुण्डलाकार उच्च पर्वतमालाओंमें मध्यके शिखरपर, पृथ्वीके गर्भमें, १४०० वर्षकी सभ्यता, संस्कृति और इतिहास छुपाए समुद्र-सतहसे करीब ३००० फुट ऊँचाईपर, कुण्डलपुर नामक स्थानमें, ३ फुट ऊँचे सिंहासनपर, १२ फुट ऊँचाईके पद्मासन आकारमें ध्यान-मुद्रा लगाए, भगवान महावीर विराजमान हैं और सारे जगतको उपदेश दे रहे हैं कि—

"हे मनुष्य पृथ्वीके क्षणभङ्गुर सुखोंको छोड़। सुख आत्माकी वस्तु है जिसे आत्मध्यानद्वारा ही पाया जा सकता है। यदि सच्चा सुख चाहता है तो आजा मेरे पास और होजा मेरे समान।"

कुण्डलाकार पर्वतमालाओंके मध्य वर्द्धमानसागर नामक सुन्दर सरोवर है, जिसमें किनारे तथा पर्वतोंपर विद्यमान ५८ जिन-मन्दिर प्रतिविम्बित होते हैं। सौन्दर्यकी श्रेणीमें अद्वितीय तथा विशालकाय पद्मासनप्रतिमाके रूपमें यह स्थान भारतवर्षमें प्रायः प्रथम श्रेणीका है।

दमोहसे श्रीकुण्डलपुरजी तक रास्ता कच्चा होनेके कारण फिलहाल यात्रा बैलगाड़ी, ताँगा और निजी मोटरद्वारा की जाती है, परन्तु शीघ्र ही जनपदसभा तथा राष्ट्रीय सरकारद्वारा पक्का रास्ता बनानेकी योजना कार्यरूपमें परिणत होनेवाली है। तब तो यह अछूता स्थान प्रकाशमें आकर इतिहासकारों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य प्रेमियोंके लिये एक आश्चर्यजनक पहेली बन जावेगा।

यहाँपर कई ऐसे स्थान अभी भी विद्यमान हैं जहाँपर खुदाई तथा प्राचीनताकी खोज करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। छठवीं[1] शताब्दीके एक-दो मठ या मन्दिर जीर्णोद्धारके अभावमें मिट्टीके ढेर बन गये हैं तथा उनके निर्माणकाल आदिका पता लगाना बिलकुल ही असम्भव-सा होगया है।

यहाँका छठवीं शताब्दीसे ग्यारहवीं शताब्दी तकका इतिहास अन्धकारमें है। संवत् ११८३की प्रतिष्ठित सिंघई मनसुभाई रैपुरा निवासी द्वारा स्थापित प्रतिमासे फिर हमें कुछ प्रकाश मिलता है जिससे मालूम होता है कि उस समय तक यह स्थान जनसाधारणकी जानकारीमें पूर्णरूपेण था।

इसके पश्चात् ४५० वर्षके इतिहासका कुछ पता नहीं चल रहा है। एक शिलालेख संवत् १५०१का एक मठमें मिलता है तथा उसके बाद सं० १५३२का प्रतिमालेख। इसी सदीकी अनेक प्रतिमा अभी तक स्थित हैं।

बड़े बाबाकी पीछेकी दहलान बन्द है, जिसमें शायद कुछ इतिहास मिलता। बड़े बाबाके नीचे तहखाना भी बन्द है। बड़े बाबाकी बायीं जाँघके ऊपर एक छेद भी था जिसमें रुपया-पैसा डालनेपर वह आवाज करता हुआ अन्दर चला जाता था। इसे अपव्यय समझकर प्रबन्धकोंने बन्द तो कर दिया, परन्तु यह पता लगानेकी आजतक कोशिश नहीं की कि आखिर वह सिक्का जाता कहाँ था? मेरा अनुमान है कि इस छेदका सम्बन्ध तहखानेसे है, तथा

---

१ अच्छा होता यदि छठवीं शताब्दीका साधक कोई आधार यहाँ प्रदर्शित किया जाता; क्योंकि जब 'मठ और मन्दिर मिट्टीके ढेर होगये और उनके निर्माणकाल आदिका पता लगाना बिल्कुल ही असम्भव-सा होगया है' तो यह निर्द्धारित कैसे किया गया कि वे छठवीं शताब्दीके हैं? यदि ऐसा कोई शिलालेखादि प्रमाण उपलब्ध है तो लेखक महाशयको उसे प्रकाशमें लाना चाहिये। —कोठिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डलपुरके बड़े बाबा श्रीमहावीरजी

तहखाना खुलवानेपर छठवीं शताब्दीसे आजतकके वे सब सिक्के प्राप्त हो सकते हैं जिनसे यह पता लगाना बिलकुल सरल हो जावेगा कि भारतवर्षमें कौन-कौन शासक यहाँ दर्शनार्थ आचुके हैं और उस समय इस स्थानकी प्रसिद्धि कहाँ-कहाँ तक फैली हुई थी।

श्रीकुण्डलपुरजीसे करीब आधा मील दूर फतेपुर नामक ग्राम है जहाँ रुक्मणीमठ नामक जैनमन्दिरके भग्नावशेष हैं। श्रीकुण्डलपुरजीके जिन-जिन मन्दिरोंमें छठवीं सदीकी जितनी प्रतिमाएँ पाई जाती हैं वे सब ही रुक्मणीमठसे ही लाकर प्रतिष्ठित की गई हैं। चिह्नस्वरूप रुक्मणीमठमें एक पाषाणपर यक्ष-यक्षिणी खजूरके वृक्षके नीचे खड़े हैं और उनके सिरपर पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा है। रुक्मणीमठके कुछ अवशेष सड़कके किनारे एक चबूतरेपर पीपलके वृक्षके

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

नीचे भी रखे हैं।

इतिहासकारोंके सम्मुख एक बड़ी पहेली यह है कि आखिर ऐसी कौनसी बात छठवीं शताब्दीमें या इसके पूर्व यहाँपर घटित हुई जिसके कारण यहाँ बड़े बाबाकी ऐसी विशाल प्रतिमाका निर्माण हुआ। ध्यान रहे कि इस कालमें इस स्थानपर गुप्तशासकोंका शासन था जो जैनधर्मानुयायी भी थे। कुछ इतिहासकार[1] मानते हैं कि यह वही कुण्डलपुर नामक स्थान है जहाँसे अन्तिम श्रुतकेवली श्रीधर स्वामी मोक्ष गये थे और इसलिये यह निर्वाणभूमि होनेके कारण प्राचीन कालसे ही इस तरह पूज्यनीय बना चला आरहा। खैर! बात जो भी हो, परन्तु निर्णय या अधिकारपूर्वक तभी कुछ कहा जा सकता है जबकि जैन विद्वान् भी इस विषयपर एकमत हों। इस क्षेत्रकी बुन्देल-शासकोंके कालमें अधिक उन्नति हुई, यह बात निर्विवाद सिद्ध है और इसके प्रमाणस्वरूप बड़े बाबाके प्रवेश-द्वारपर लगा शिलालेख अब भी विद्यमान है।

सैकड़ों वर्षकी धूप और वर्षाने बड़े बाबाके मन्दिरको न मालूम कब जीर्ण-शीर्ण बना दिया और वह ढहकर एक टीलेका रूप धारण कर चुका जिससे लोग उसे मन्दिर-टीला नामसे सम्बोधित करने लगे। परन्तु उस टीलेमें बड़े बाबा पूर्ण सुरक्षित और अखण्ड बने रहे। मन्दिर-टीला नाम शिलालेखमें मिलता है।

इस प्रकार बड़े बाबाकी वह कीर्ति और यश कुछ समयके लिये आलोप-सा हो गया। उस स्थानपर भीहड़ झाड़ियों वृक्षों और जङ्गली पशुओंका निवास होजानेसे मनुष्यका गमन ही बन्द-सा हो गया। हाँ, कुछ लोग यह जानते रहे कि अमुक ग्राममें मन्दिर-टीले नामक स्थानपर एक विशाल जैन प्रतिमा मौजूद है। इस प्रकार यह प्राचीन मन्दिर करीब २०० वर्ष तक समाधिस्थ बना रहा।

संवत् १७७० या इसके करीब श्रीमूलसंघ बलात्कार गण सरस्वती भक्तविद्याधीश आचार्य श्रीसुरेन्द्रकीर्तिजी कुन्दस्वामी कुन्दकुन्दाचार्यके वंशज अपने शिष्यों सहित इस स्थानपर दर्शन हेतु पधारे। बड़े बाबाके दर्शनसे वे बड़े प्रभावित हुए और उनके शिष्य श्री सुचन्दगणिजीने मन्दिरके जीर्णोद्धारके हेतु भिक्षा माँगनेकी आज्ञा गुरुसे ली। आप मन्दिरजीका कुछ हिस्सा ही बनवा पाये थे कि दैवदुर्विपाकसे आपकी आयु पूर्ण होगई तब उनके सच्चे मित्र नमिसागरजी ब्रह्मचारीने इस अधूरे कार्यको पूर्ण करनेका बीड़ा उठाया।

इसी समय बुन्देलखण्डगौरव शूर-वीर-सम्राट् छत्रसाल मुगल-आततायियों द्वारा सताए हुये अपनी राजधानी पन्ना छोड़कर मारे-मारे इधर-उधर सहायता और अपना राज्य वापिस लेनेके प्रयत्नमें फिर रहे थे। मनुष्यका जहाँ वश नहीं चलता वहाँ वह अपनेको भगवानके बलपर छोड़ देता है। यही हाल महाराजाधिराज छत्रसालका हुआ। वे बड़े बाबाके दरबारमें आए। नमिसागरजी ब्रह्मचारीसे उनकी भेंट हुई। ब्रह्मचारीजीने उनके सामने भी मन्दिरजीकी मरम्मतके लिये हाथ फैला दिये। परन्तु सम्राट् लाचार थे। वे खुद ही विपत्तिके मारे फिर रहे थे। तो भी सम्राट्ने साहस बटोर कर प्रतिज्ञा की कि यदि मैं पुनः अपना राज्य वापिस पाऊँ तो इस मन्दिरजीका जीर्णोद्धार कोषकी तरफसे करा दूँगा।

आप इसे अतिशय कहिये या सम्राट्का पुण्योदय कि उन्हें फिरसे अपना राज्य वापिस मिल गया। वे अपनी प्रतिज्ञा नहीं भूले और शाही-कोषसे मन्दिरजीका जीर्णोद्धार कार्य शुरू होगया। साथ ही मध्यस्थित तालाबके चारों ओर घाट बनवाए जाने लगे। संवत् १७५७ मघा नक्षत्र माघ सुदी १५ सोमवारको जीर्णोद्धार कार्य पूर्ण हुआ।

इस अवसरपर महाराजाधिराज छत्रसाल मन्दिरजीकी प्रतिष्ठा हेतु स्वयं श्रीकुण्डलपुरजी पधारे। उन्होंने बड़े बाबाकी पूजन की और द्रव्य, वर्तन तथा सोने-चाँदीके चमर-छत्र भी भेंट किये। उनका दिया पीतलका एक थाल (कोपर) अब भी श्रीकुण्डलपुरजी

१ जिनकी यह मान्यता है उनमेंसे एक दोके नाम यहाँ *प्रकट कर दिये जाते तो अच्छा होता। —कोठिया*

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

के भण्डारमें मौजूद है। उन्होंने उस स्थानका नाम परिवर्तनकर वहाँकी कुण्डलाकार पर्वत-श्रेणियोंके आधारपर श्रीकुण्डलपुरजी रखा और तालाबका नाम वर्द्धमानसागर। तबसे पुनः बाबाकी ख्याति बढ़ने लगी और धीरे-धीरे यह स्थान जनसाधारणकी जानकारीमें फिरसे आगया। श्रीकुण्डलपुरजीके आस-पासके ग्रामीणोंने भगवान महावीरकी इस विशाल-काय जैनप्रतिमाको बड़े बाबाके सुन्दर नामसे सम्बोधन करना शुरू कर दिया। इस जीर्णोद्धारकी तिथिकी स्मृतिस्वरूप सम्राट्की आज्ञासे माह सुदी ११से १५ तक प्रतिवर्ष यहाँ विशाल मेला भरने लगा जिसका प्रबन्ध राज्यकी तरफसे रहता था। आज भी मेलेमें जैन और अजैन आकर बड़े बाबाके दर्शनकर अपनी भक्ति प्रकट करते और पुण्य लाभ उठाते हैं।

बुन्देलखण्डको इस प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण महान् क्षेत्रके अपनी गोदमें होनेका अभिमान है। मन्दिरजीके प्रवेशद्वारपर जिनशासनरक्षकदेवता क्षेत्रपाल भी वृह-ताकारमें उसीसमयसे स्थित हैं जबसे कि बड़े बाबा।

संवत् २०००से श्रीकुण्डलपुरजी क्षेत्रपर बड़े बाबा का एकाधिपत्य होगया है। इस क्षेत्रका प्रबन्ध जन-तन्त्रीय कमेटीद्वारा होता है। क्षेत्रमें यात्रियोंकी सुविधा हेतु विशाल धर्मशालाएँ बन गई हैं। क्षेत्रका प्रबन्ध सुव्यवस्थित होनेपर भी अर्थाभावके कारण यहाँ जीर्णोद्धार कार्य इतना पड़ा हुआ है कि यदि लाखों रुपया भी खर्च किया जावे तो थोड़ा होगा फिर भी जीर्णोद्धार बारहमासी चालू ही बना रहता है।

शिमलाका पर्यूषणपर्व

इस वर्ष शिमला-जैनसभाके मन्त्री लाला जिनेश्वरप्रसादजी जैनके निमंत्रण और प्रेमपूर्ण आग्रह पर मैं पर्यूषणपर्वमें शिमला गया था। ६ सितम्बरको चलकर ७ सितम्बरको सुबह ८-२० पर शिमला पहुंचा स्टेशनपर उतर कर रिम-झिम वर्षा, कुहर और महोच्च पर्वतीय दृश्योंका अवलोकन करता हुआ जैनधर्मशाला पहुंचा, जहाँ जैन-अजैन सभी यात्रियोंके ठहरनेकी बड़ी ही अच्छी सुख-सुविधा तथा व्यवस्था है।

शिमलामें रात्रिको ७½ बजेसे १० बजे तक शास्त्र-प्रवचन होता है। दिनमें प्रायः सभी धर्मबन्धुओंके ऑफिसोंमें कामपर जानेके कारण उक्त समय ही धर्म-चर्चाके लिये वहाँ उपयोगी होता है। पञ्चमीसे द्वादशी तक मेरेद्वारा शास्त्र-प्रवचनादि होता रहा। त्रयोदशीको अस्वस्थ हो जानेपर अन्तिम दोनों दिन शास्त्रप्रवचन ला० मिहरचन्दजी खजाञ्ची इम्पीरियलबैंकने किया।

चतुर्दशीको दिनमें ३ बजे एक आम सभा की गई जिसके अध्यक्ष बा० सन्तलालजी देहली थे। जैनधर्म की विशेषताओंपर मेरा करीब एक घण्टा भाषण हुआ। मेरे बाद सोनपतके एक धर्मबन्धु और उनकी धर्मपत्नीके भी भाषण हुए। अन्तमें ला० जिनेश्वर-प्रसादजीने सभाकी वार्षिक रिपोर्ट सुनाई।

पर्यूषणपर्वके प्रसङ्गसे शिमलाके कई अपरिचित उत्साही और लगनशील युवकबन्धुओंसे परिचय हुआ। इनमें बा० अयोध्याप्रसादजी, ला० जिनेश्वरप्रसादजी, निरञ्जनलालजी, पं० बालचन्दजी, डॉ० एस० सी० जैन आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी शक्ति और उत्साहसे सभाको पूरा लाभ उठाना चाहिये।

शिमला अखिल भारतवर्षीय और पञ्जाब गवर्न-मेण्टकी प्रवृत्तियोंका महत्वपूर्ण स्थान है। दूर-दूरसे सहस्रों व्यक्ति उसे देखनेके लिये जाते हैं जो प्रायः शिक्षित ही होते हैं, उनमें जैनधर्मके ज्ञानकी अभिरुचि पैदा कर जैन-साहित्य और जैन-धर्मका अच्छा प्रचार किया जा सकता है। अतः सभाका ध्यान निम्न तीन कार्योंकी ओर आकर्षित कर रहा हूँ—

१. जैन-लायब्रेरीकी स्थापना, जिसमें प्रचारयोग्य जैन-साहित्यके अलावा जैन-ग्रन्थोंका वृहत् संग्रह हो।

२. जैनकॉलोनी, जहाँ बाहरसे कामके लिये आये हुए जैन बन्धुओंको किरायेपर स्थान मिल सके।

३. जैन-पाठशालाकी स्थापना, इसके द्वारा स्थानीय बालक-बालिकाओंको जैनधर्म तथा अन्य विषयोंकी स्वच्छ वातावरणमें शिक्षा दी जा सकेगी।

४-१०-१९४८, —कोठिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

दि विहार रिलिजियस ट्रस्ट बिल और जैन—

स्वाधीन भारतकी प्रान्तीय सरकारोंका ध्यान अब धार्मिक सम्पत्तिकी ओर आकृष्ट हुआ है। बम्बई सरकारने टेंदुलकर कमैटी बैठाई है जो आज जनता का मत प्राप्तकर, उनकी सुविधाओंको ध्यानमें रखकर कानून बनाया जाय, परन्तु बिहार सरकारने तो जन-मत लेना आवश्यक न समझकर सीधा बिल ही तैयार करवा डाला जो कानूनका रूप धारण करने जारहा है प्रथम अधिकार स्वीकार करनेपर ही इसका निर्माण काँग्रेस सरकारने किया था पर जैनोंके तीव्र विरोधके कारण या तो राजनैतिक या भूमण्डल प्रतिकूल होनेसे यह उसे पास न करा सकी, १९४७ में पुनः यह समस्या खड़ी करदी गई है। इसकी प्रतिलिपि हमारे सम्मुख है। इसपर सूक्ष्मतासे दृष्टिपात करनेसे अव-गत होता है कि सरकार "बिहार प्रान्तीय धार्मिक ट्रस्टों का एक मण्डल" स्थापित करना चाहती है। जो एक ओर बिहार सरकार और दूसरी ओर धार्मिक सम्पत्ति के व्यवस्थापकके बीच अधिकारी, उत्तरदायित्वपूर्ण एजेंटके रूपमें काम करेगा, इस प्रकार अधिकारी मण्डल बनेगा, जिसका प्रधान कार्य होगा धार्मिक ट्रस्टोंपर सरकारकी ओरसे निगरानी रखना और सरकारकी ओरसे उन्हें समय समयपर सलाह देते रहना, यहाँपर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सरकार को किन परिस्थितियोंने कानून बनानेको बाध्य किया? क्योंकि पश्चात् भूमिकाको समझ लेनेसे कार्य आसान होजाता है और विरोधकी गुंजायश भी कम रहती है हमारी समझमें तो यही आता है कि आज हिन्दू मन्दिर, मठ और तीर्थ स्थानोंमें महंतों, पंडों और तथाकथित व्यवस्थापकों द्वारा जनता द्वारा प्रदत्त धार्मिक सम्पत्तिका जैसा दुरुपयोग होता है उसे देखकर कँपन हो आता है। अचिंतित अनिष्ट तक हुआ करते हैं, यदि इस सम्पत्तिकी समुचित व्यवस्था हो तो जानतिक सम्पत्तिका सदुपयोग हो और स्वतन्त्र भारत जो अपना सांस्कृतिक उत्थान अतिशीघ्र करने जारहा है उसमें भी कुछ मदद मिले, ऐसे ही कारणों के वशीभूत होकर शायद सरकारने कथित सम्पत्तिकी सद्व्यवस्थाके लिये ही कानून बनाया हो, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है, ट्रस्टियोंकी लापरवाहीने ही कानून बनानेका सरकारको एक प्रकारसे मौन निमन्त्रण दिया, कोई भी सुसंस्कृत हिन्दू इसका सहर्ष स्वागत करेगा।

बिल १६ प्रकरण ८० धाराएँ तथा सामान्य या विशेष कई धाराओंमें विभाजित है। प्रथम प्रकरणकी दूसरी धारामें हिन्दूकी जो व्याख्याएँ दी हैं उनमें जैन बौद्ध और सिखोंको भी सम्मिलित कर लिया है, जो सर्वथा अनुचित और न्याय सङ्गत नहीं है। जैनोंके धार्मिक स्थानों और व्यवस्थापकोंमें हिन्दुओं जैसी अव्यवस्था नहीं है। जैनी धार्मिक सम्पत्ति—देवद्रव्यको अत्यन्त पवित्र मानकर उनका उपयोग फिर कभी सामाजिक कार्योंमें नहीं करते, ऐसी स्थितिमें गेहूंके साथ घुन पीसने जैसी कहावत चरितार्थ करना सरकारके लिये शोभास्पद नहीं। सांस्कृतिक और सैद्धान्तिक दृष्टियोंसे हिन्दुओंसे जैन सर्वथा प्रथक् हैं—आकाश-पातालका अन्तर है। गत ८ अप्रैल को अखिल भारतवर्षीय जैन-प्रतिनिधि-मण्डल इसके विरोधमें बिहार सरकारके प्रधानमन्त्री श्री कृष्णसिंह और विकास मन्त्री श्री डॉ० सैयदमहमूदसे मिला था, आप लोगोंने आश्वासन दिया है। प्रतिनिधि मण्डलमें बाबू इन्द्रचन्दजी सुचन्ती (बिहारशरीफ) और बाबू मेघराज मोदीने अच्छा भाग लिया, सारा यश इन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोनों तथा बाबू मङ्गलचन्दजी सा० झाबकको मिलना चाहिये। अब पुनः ६ सितम्बरको जब धारासभा खुलेगी तब यह बिल उपस्थित किये जानेकी संभावना है, इस प्रसङ्गपर जैनोंको विरोध करना चाहिये। यदि बिल जैनोंपर लागू हुआ तो जैनोंकी जो धार्मिक स्वतन्त्रता है वह सदाके लिये नष्ट हो जायगी, कारण कि बोर्डको जो अधिकार दिये गये हैं वे जैनोंके लिये घातक हैं। उदाहरणके लिये बोर्डमें जैन तो एक सदस्य रहेगा और सरकारी ११ रहेंगे, काम बहुमतसे होंगे और जिस मन्दिरमें अधिक सम्पत्ति है उसका परिवर्तन भी संभव है। ऐसी परिस्थितिमें जैनोंको बड़ा नुकसान उठाना पड़ेगा, अतः क्यों नहीं सारे भेदभाव भुलाकर एक स्वरसे सरकारका विरोध करते। मुझे अपने धार्मिक और सामाजिक ट्रस्टोंके ट्रस्टियोंसे भी दो बातें कहनी हैं। मान लीजिये कि जैनी उपरि कथित कानूनसे पृथक् होगये तो इसका अर्थ यह न होना चाहिये कि आप अपनी दुर्व्यवस्थाकी परम्पराके प्रवाहको आगे बढ़ाते जायें। यह बड़ी भूल होगी, तीर्थस्थानोंके रुपयोंका उपयोग यदि अन्य प्राचीन जैन मन्दिरोंके जीर्णोद्धारमें व्यय हो तो क्या बुरा है? बिहारकी ही मैं बात करूँगा, उदाहरण रूपमें मैंने यहाँकी कलापूर्ण प्रतिमाएँ देखीं। मेरा विचार था कि यदि पावापुरी भण्डारसे इनका एक सचित्र आल्बम निकल जाय तो कितना अच्छा हो। साथमें बिहार-प्रान्तीय जैन-संस्कृतिके इतिहासको आलोकित करनेवाली कुछ पंक्तियाँ भी रहें, पर मुझे दुःख है कि यह सांस्कृतिक विकासकी बात भी उनकी समझमें नहीं आई यदि आई है तो क्यों नहीं उसे क्रियान्वित करते? यह तो हुई धार्मिक ट्रस्टकी बात। दूसरी बात यह है कि पटना में स्व० सुराना किसनचन्द जौहरीने १९३४ मार्चमें एक 'जैन श्वेताम्बर सुकृत फण्ड' स्थापित किया था, उनके वसीयतनामामें लिखा है पाठशाला, अनाथालय और बहनोंको सहायता करना। ट्रस्टकी मूल सम्पत्ति १ लाख २५ हजारसे भी अधिक है। इसके ब्याजसे ही यदि काम किया जाय तो बिहार-प्रान्तमें जैनधर्म और संस्कृतिकी ज्योति जलाई जासकती है। स्व० जौहरीजीका तो यही ध्यान था, पर आज तक कुछ भी काम नहीं हुआ। न जाने कुछेक ट्रस्टी लोग अपने परिवारवालोंके साथ क्या-क्या कर रहे हैं। आज जैन जनता इसे सहायता कर उन्नत बनाना चाहती है तो वे सहायता इसलिये नहीं लेते कि उनको हिसाब पेश करना पड़ेगा। सामाजिक सम्पत्तिका मनमाना उपयोग करना मूर्खताकी पराकाष्ठा है। जनताको हिसाब न बताना, ऐसे ट्रस्टोंकी व्यवस्थासे जैन युवक स्वाभाविक रूपसे क्षुब्ध रहते हैं। मैंने तो केवल दो उदाहरण ही दिये हैं। न जाने कितने जैनट्रस्टोंकी भी वैसी ही दुरवस्था होगी। समयका तक़ाजा है कि अधिकारीगण अब अपनेको वह सम्पत्तिका स्वामी न समझें, बल्कि जनताका सेवक समझें, वरना आगामी युगका वायुमण्डल उनके सर्वथा प्रतिकूल होगा।

प्रान्तमें हम सूचित करते हैं कि बिलका विरोध किया जाय उसकी प्रति सेठ मङ्गलचन्द शिवचन्द चौक सिटीके पतेपर सूचना दें।

ता० २६ को मैं बिहारसरकारके अर्थसचिव श्रीअनुग्रहनारायणसे मिला था जैनसंस्कृतिकी दृष्टिसे मैंने उनको समझाया कि जैन पृथक् ही रखे जायें। आपने कहा कैबिनेटमें मैं आपके विचार उपस्थित करूँगा, आप निश्चिन्त रहें मुझसे बनेगा उतना मैं करूँगा। मेरा तो विश्वास है कि वे अवश्य जैनोंको बिलसे पृथक् रखेंगे।

२९-९-४८ मुनि कान्तिसागर
पटना सिटी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके प्रकाशन

१. **महाबन्ध**—(महधवल सिद्धान्त-शास्त्र) प्रथम भाग। हिन्दी टीका सहित मूल्य १२)।

२. **करलक्खण**—(सामुद्रिक-शास्त्र) हिन्दी अनुवाद सहित। हस्तरेखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ। सम्पादक—प्रो० प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम० ए०, अमरावती। मूल्य १)।

३. **मदनपराजय**— कवि नागदेव विरचित (मूल संस्कृत) भाषानुवाद तथा विस्तृत प्रस्तावना सहित। जिनदेवके कामके पराजयका सरस रूपक। सम्पादक और अनुवादक-पं० राजकुमारजी सा०। मू० ८)

४. **जैनशासन**—जैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करने वाली सुन्दर रचना। हिन्दू विश्वविद्यालयके जैन रिलीजनके एफ० ए० के पाठ्यक्रममें निर्धारित। मुखपृष्ठपर महावीरस्वामीका तिरङ्गा चित्र। मूल्य ४।-)

५. **हिन्दी जैन-साहित्यका संक्षिप्त इतिहास**—हिन्दी जैन-साहित्यका इतिहास तथा परिचय। मूल्य २॥)।

६. **आधुनिक जैन-कवि**—वर्तमान कवियोंका कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ। मूल्य ३॥)।

७. **मुक्ति-दूत**—अञ्जना-पवनञ्जय-का पुण्यचरित्र (पौराणिक रोमाँस) मू० ४॥)

८. **दो हजार वर्षकी पुरानी कहानियां**—(६४ जैन कहानियाँ) व्याख्यान तथा प्रवचनोंमें उदाहरण देने योग्य। मूल्य ३)।

९. **पथचिह्न**—(हिन्दी-साहित्य-की अनुपम पुस्तक) स्मृति रेखाएँ और निबन्ध। मूल्य २)।

१०. **पाश्चात्यतर्क शास्त्र**—(पहला भाग) एफ० ए० के लॉजिकके पाठ्यक्रमकी पुस्तक। लेखक—भिक्षु जगदीशजी काश्यप, एफ० ए०, पालि—अध्यापक, हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी। पृष्ठ ३८४। मूल्य ४॥)।

११. **कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न**—मूल्य २)।

१२. **कन्नडप्रान्तीय ताडपत्र ग्रन्थ-सूची**—(हिन्दी) मूडबिद्रीके जैनमठ, जैन-भवन, सिद्धान्तवसदि तथा अन्य ग्रन्थ-भण्डार कारकल और अलिपूरके अलभ्य ताडपत्रीय ग्रन्थोंके सविवरण परिचय। प्रत्येक मन्दिरमें तथा शास्त्र-भण्डारमें विराजमान करने योग्य। मूल्य १०)।

वीरसेवामन्दिरके सब प्रकाशन भी यहाँपर मिलते हैं

प्रचारार्थ पुस्तक मँगाने वालोंको विशेष सुविधाएँ

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. A-731

शेर-ओ-शायरी

[उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज़्म]

प्राचीन और वर्त्तमान कवियोंमें सर्वप्रधान

लोक-प्रिय ३१ कलाकारोंके मर्मस्पर्शी पद्योंका सङ्कलन और उर्दू-कविताकी गति-विधिका आलोचनात्मक परिचय

प्रस्तावना-लेखक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति महा पंडित राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं—

"शेरोशायरी"के छ सौ पृष्ठोंमें गोयलीयजीने उर्दू-कविताके विकास और उसके चोटीके कवियोंका काव्य-परिचय दिया। यह एक कवि-हृदय, साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। हिन्दीको ऐसे ग्रन्थोंकी कितनी आवश्यकता है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। उर्दू-कवितासे प्रथम परिचय प्राप्त करनेवालोंके लिये इन बातोंका जानना अत्यावश्यक है। गोयलीयजी जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू "छन्द और कविता"का चतुर्मुखीन परिचय कराया। गोयलीयजीके संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं तो समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

कर्मयोगीके सम्पादक श्रीसहगल लिखते हैं—

"वर्षोंकी छानबीनके बाद जो दुर्लभ सामग्री श्रीगोयलीयजी भेंट कर रहे हैं इसका जवाब हिन्दी-संसारमें चिराग़ लेकर ढूँढनेसे भी न मिलेगा, यह हमारा दावा है।"

सुरुचिपूर्ण मुद्रण, मनमोहक कपड़ेकी जिल्द

पृष्ठ संख्या ६४० — मूल्य केवल आठ रुपए

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड, बनारस

प्रकाशक—पं० परमानन्द जैन शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ काशीके लिये आशाराम खत्री द्वारा रॉयल प्रेस सहारनपुरमें मुद्रित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org